CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रंगे एवं छपे वस्त्र

(उत्तर भारतीय रंगाई एवं छपाई कला का एक अध्ययन)

डॉ० देवकी अहिवासी

~~मूल्य : बीस रुपये~~ संशोधित मूल्य-पैंतीस रुपये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वाधिकार सुरक्षित

4678

मुद्रक :—
श्री शंकर प्रेस, लंका, वाराणसी-५

ब्लॉक :—
श्री अन्नपूर्णा ब्लॉक वर्क्स, बांसफाटक, वाराणसी

State Museum Library Lucknow

प्रथम संस्करण—१९७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्मति

भारत की प्रयुक्त कलाओं में वसन का स्थान प्रमुख है। वैदिक काल से इस कौशल की चर्चा प्राप्त होने लगती है। परन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि इस प्रयुक्त कला का अध्ययन बहुत नज़र अन्दाज़ रहा है।

ऐसी शोचनीय स्थिति में इस विषय के जो इने-गिने लोग काम कर रहे हैं वे सराहना के पात्र हैं।

डॉ० देवकी अहिवासी का नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। वह इस प्रयुक्त कला की विशेषताओं में पैठ पाई हैं; इसका मर्म समझा है।

ऐसी विदुषी द्वारा लिखित पुस्तक "रंगे एवं छपे वस्त्र" का प्रमाणिक होना स्वाभाविक है। उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। मुझे निश्चित है कि इस प्रयुक्त कला के विद्यार्थी इस पुस्तक से बहुत कुछ सीखेंगे। यही नहीं विशेषज्ञ भी इससे लाभान्वित होंगे।

देवकी जी की सफलता की मैं हृदय से सराहना करता हूँ।

१२–६–७६ ई०

राय कृष्णदास
निदेशक :—
भारत कला भवन
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस–५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
१.	भूमिका	
२.	रंगाई कला	१–१३
३.	बंधेज या बांधनी	१४–१७
४.	छपे और चित्रित कपड़े	१८–४२
५.	परिशिष्ट १	
६.	परिशिष्ट २.	
७.	पुस्तक सूची	
८.	चित्रित फलक	१–२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक "रंगे एवं छपे वस्त्र" मेरे शोध-प्रबन्ध "उत्तर भारतीय वस्त्र एक अध्ययन" का एक अंश है। जुलाई १९६५ में स्व० डॉ० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के सुझाव पर उन्हीं के सुयोग्य मार्ग-दर्शन में मैंने शोध-प्रबन्ध का कार्य प्रारम्भ किया था। निरन्तर अस्वस्थ रहने पर भी जीवन के अन्तिम दो वर्षों में इस सम्बन्ध में उनसे मुझे बराबर प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा, इसके लिए मैं उनकी चिर ऋणी रहूँगी। तत्पश्चात् मुझे डॉ० राय आनन्दकृष्ण जी, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, कला इतिहास विभाग, का० हि० वि० वि० का उचित मार्गदर्शन मिला, जिसके लिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूं। मैं आदरणीय राय कृष्णदास जी, निदेशक, भारत कला भवन, का० हि० वि० वि० की भी सदा ऋणी रहूँगी, जिनकी कृपा से मुझे भारत कला भवन के विशाल वसन संग्रह के अध्ययन तथा अन्य सभी प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हुई।

सूती रंगे और छपे वस्त्र भारत की जलवायु के सर्वाधिक अनुकूल हैं। इनका उपयोग लगभग सभी प्रदेशों में वर्ष भर होता है। दुर्भाग्य से रासायनिक रंगों के प्रचलन तथा विदेशी कला के प्रति कलाकारों के झुकाव के कारण सूती वस्त्रों का कलात्मक स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। व्यापारी वर्ग भी इनके कला पक्ष की ओर ध्यान न देकर व्यापारिक पक्ष को प्रमुखता देते हैं। मिलों में ही नहीं हथ-कर्घा उद्योग में भी मोटी और भद्दी भांते प्रयुक्त हो रही हैं। कुछ इने गिने लोगों को छोड़कर प्रायः सभी वर्ग के लोगों में वस्त्रों के प्रति कलात्मक अभिरुचि का अभाव होता जा रहा है। इस परिस्थिति में यह आवश्यक हो गया है कि हम वस्त्र निर्माता, व्यापारी तथा उपभोक्ताओं को अपने प्राचीन वस्त्र-वैभव का स्मरण करायें और उनके प्रति सबके मन में कलात्मक अभिरुचि जगाकर पुरानी रंगाई एवं छपाई की परम्परागत अलंकारिक भांतों को पुनः प्रचिलित करें। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा की ओर एक प्रयास है।

रंगों की विविधता, चटकीलापन एवं फटने पर्यन्त ताजगी का बना रहना भारतीय रंगाई कला की प्रमुख विशेषता रही है। विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों तथा खनिज पदार्थों के माध्यम से भारतीय रंगरेजों ने असंख्य रंगतों को जन्म दिया। नयी पीढ़ी के रंगरेज भारतीय रंगों की इस विविधता और रंगाई की प्राचीन पद्धतियों को भूल चुके हैं। इतना ही नहीं रंगतों के भारतीय नाम भी अब प्रचलन में न रहे। प्रस्तुत पुस्तक के रंगाई वाले अध्याय में उन असंख्य रंगतों के नाम संग्रहीत करने का प्रयत्न किया गया है, जिनका प्रचलन बोल-चाल की भाषा में अब समाप्त-प्राय हो चुका है।

उत्तर भारतीय छींटों में अलंकारिक भांतों का विशाल भण्डार देखकर आश्चर्य होता है। अधिकतर भांतों का संयोजन प्राकृतिक वनस्पतियों के आधार पर हुआ है, परन्तु कहीं भी उनको ज्यों का त्यों नहीं प्रस्तुत किया गया। प्रायः किसी एक पौधे की विशेषताओं और स्वभाव को ग्रहण करते हुए बड़ी कुशलता से भारतीय कलाकारों ने उसके फल, फूल एवं पत्तियों का संयोजन, गोल, बदाम, कैरी, कलंगे या पान के आकार में किया है। गुजरात और राजस्थान की कुछ छींटों के अंकन में तो वास्तविकता से भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
१.	भूमिका	
२.	रंगाई कला	१–१३
३.	बंधेज या बांधणी	१४–१७
४.	छपे और चित्रित कपड़े	१८–४२
५.	परिशिष्ट १	
६.	परिशिष्ट २.	
७.	पुस्तक सूची	
८.	चित्रित फलक	१–२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक "रंगे एवं छपे वस्त्र" मेरे शोध-प्रबन्ध "उत्तर भारतीय वस्त्र एक अध्ययन" का एक अंश है। जुलाई १९६५ में स्व० डॉ० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के सुझाव पर उन्हीं के सुयोग्य मार्ग-दर्शन में मैंने शोध-प्रबन्ध का कार्य प्रारम्भ किया था। निरन्तर अस्वस्थ रहने पर भी जीवन के अन्तिम दो वर्षों में इस सम्बन्ध में उनसे मुझे बराबर प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा, इसके लिए मैं उनकी चिर ऋणी रहूँगी। तत्पश्चात् मुझे डॉ० राय आनन्दकृष्ण जी, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, कला इतिहास विभाग, का० हि० वि० वि० का उचित मार्गदर्शन मिला, जिसके लिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूं। मैं आदरणीय राय कृष्णदास जी, निदेशक, भारत कला भवन, का० हि० वि० वि० की भी सदा ऋणी रहूँगी, जिनकी कृपा से मुझे भारत कला भवन के विशाल वसन संग्रह के अध्ययन तथा अन्य सभी प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हुईं।

सूती रंगे और छपे वस्त्र भारत की जलवायु के सर्वाधिक अनुकूल हैं। इनका उपयोग लगभग सभी प्रदेशों में वर्ष भर होता है। दुर्भाग्य से रासायनिक रंगों के प्रचलन तथा विदेशी कला के प्रति कलाकारों के झुकाव के कारण सूती वस्त्रों का कलात्मक स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। व्यापारी वर्ग भी इनके कला पक्ष की ओर ध्यान न देकर व्यापारिक पक्ष को प्रमुखता देते हैं। मिलों में ही नहीं हथ-कर्घा उद्योग में भी मोटी और भद्दी भांते प्रयुक्त हो रही हैं। कुछ इने गिने लोगों को छोड़कर प्रायः सभी वर्ग के लोगों में वस्त्रों के प्रति कलात्मक अभिरुचि का अभाव होता जा रहा है। इस परिस्थिति में यह आवश्यक हो गया है कि हम वस्त्र निर्माता, व्यापारी तथा उपभोक्ताओं को अपने प्राचीन वस्त्र-वैभव का स्मरण करायें और उनके प्रति सबके मन में कलात्मक अभिरुचि जगाकर पुरानी रंगाई एवं छपाई की परम्परागत अलंकारिक भांतों को पुनः प्रचिलित करें। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा की ओर एक प्रयास है।

रंगों की विविधता, चटकीलापन एवं फटने पर्यन्त ताजगी का बना रहना भारतीय रंगाई कला की प्रमुख विशेषता रही है। विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों तथा खनिज पदार्थों के माध्यम से भारतीय रंगरेजों ने असंख्य रंगतों को जन्म दिया। नयी पीढ़ी के रंगरेज भारतीय रंगों की इस विविधता और रंगाई की प्राचीन पद्धतियों को भूल चुके हैं। इतना ही नहीं रंगतों के भारतीय नाम भी अब प्रचलन में न रहे। प्रस्तुत पुस्तक के रंगाई वाले अध्याय में उन असंख्य रंगतों के नाम संग्रहीत करने का प्रयत्न किया गया है, जिनका प्रचलन बोल-चाल की भाषा में अब समाप्त-प्राय हो चुका है।

उत्तर भारतीय छींटों में अलंकारिक भांतों का विशाल भण्डार देखकर आश्चर्य होता है। अधिकतर भांतों का संयोजन प्राकृतिक वनस्पतियों के आधार पर हुआ है, परन्तु कहीं भी उनको ज्यों का त्यों नहीं प्रस्तुत किया गया। प्रायः किसी एक पौधे की विशेषताओं और स्वभाव को ग्रहण करते हुए बड़ी कुशलता से भारतीय कलाकारों ने उसके फल, फूल एवं पत्तियों का संयोजन, गोल, बदाम, कैरी, कलंगे या पान के आकार में किया है। गुजरात और राजस्थान की कुछ छींटों के अंकन में तो वास्तविकता से भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक सुकुमारता और लचक आ गयी है। सांगानेरी छींटों में कहीं-कहीं कांटेदार अथवा कलात्मक दृष्टि से अति सामान्य पौधों का अंकन भी बड़े संतुलित और आकर्षक ढंग से हुआ है।

अलंकरण जौर पृष्ठभूमि के रंगों में अद्भुत सामंजस्य, भारतीय छींटों की एक अन्य प्रमुख विशेषता है। हल्के अथवा गहरे रंग की जमीन पर उभारी गयीं रंग-बिरंगी भांतों में रंगों के विरोधाभास को वाह्य-रेखाओं के माध्यम से इस कुशला से दूर कर दिया गया है कि कहीं भी आंखों में खटकने वाला भड़कीलापन नहीं प्रकट होता। इस प्रकार संतुलित अलंकरण, रंगों का सही चुनाव एवं वितरण, पृष्ठभूमि तथा अलंकरण के रंगों में सामंजस्य आदि सभी तत्व भारतीय छपे वस्त्रों को आकर्षक बनाने में सामूहिक रूप से सहायक हैं।

अंत में मैं बनारस, जयपुर, अहमदाबाद तथा लखनऊ के छीपा और रंगरेजों के प्रति आभार व्यक्त करना भी अपना कर्तव्य समझती हूं जिन्होंने बड़ी सहृदयता से इस क्षेत्र में मेरी सहायता की तथा उन अनेक बातों की जानकारी दी जो मुझे अन्यत्र नहीं मिल सकती थी।

इस अवसर पर मैं ज्ञात और अज्ञात उन सभी कारीगरों और उनके कलाप्रेमी संरक्षकों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करती हूँ, जिनके युग में बने वस्त्रों के नमूने आज भी अनेक संग्रहालयों में गत वैभव की गौरव-गाथा संजोये हुए हैं।

रेखांकन के लिए मैं श्री जयशंकर मिश्र को धन्यवाद देती हूँ। इनकी सहायता के बिना यह पुस्तक अधूरी ही रह जाती। कुछ आकृतियों के रेखांकन के लिए श्री कर्णमान सिंह जी (कलाकार, भारत कला भवन) धन्यवाद के पात्र हैं।

यह पुस्तक प्रकाशन के क्षेज में मेरा प्रथम प्रयास है। अनुभव न होने से अनेक त्रुटियों का होना स्वाभाविक ही है। आशा है पाठक इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे तथा भविष्य के लिए उचित सुझाव देंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रंगाई कला

भारत में रंगाई कला की प्राचीनता सिन्धुघाटी की खुदाई से प्राप्त एक लाल कपड़े के अवशेष से प्रमाणित है।[१] प्राचीन संस्कृत साहित्य और भित्ति चित्रों से ज्ञात होता है कि स्त्री-पुरुष दोनों रंगीन वस्त्र धारण करने के शौकीन थे। रंगों के सम्बन्ध में उनका ज्ञान इतना सुविकसित था कि वे ऋतु, दिन, उत्सव और मांगलिक प्रसंगों के अनुकूल तथा अपने शरीर के वर्ण से मेल खाते हुए वस्त्र पहनना पसन्द करते थे।

महापरिनिब्बाणसुत्त में उल्लेख है कि भगवान बुद्ध के आगमन पर वैशाली निवासी अपने शरीर के रंगों से मेल खाते वस्त्राभूषण धारण कर उनके दर्शन को चल पड़े[२]। उल्लेख है कि भगवान बुद्ध का मृत्य शरीर कुशलतापूर्वक रंगे हुए नीले, पीले और लाल रंग के सूती कपड़ों से ढका गया था[३]।

मनु द्वारा सातवें अध्याय में रंगे वस्त्रों के सम्बन्ध में बनाये नियमों तथा 'महावग्ग[४]' में उल्लिखित रंगाई की पद्धति से उस काल के सुविकसित रंगाई उद्योग का अनुमान लगाया जा सकता है।

पाणिनि के सूत्रों में कई प्रकार के रंगों से रंगे वस्त्रों का उल्लेख है। रंग तथा रंग के घोल के लिए राग शब्द प्रयुक्त हुआ है,[५] जो बाद तक इसी अर्थ में प्रयुक्त होता रहा[६]। पाणिनि के समय में लाल (लोहितक), काले (कालक), लाखी (लाक्षिक), मजीठी (मंजिष्ठ), नीले और पीले (गोरोचन) रंगों से वस्त्र रंगने की प्रथा थी। शफल, कर्दम तथा हरसिंगार के फूलों से भी वस्त्र रंगे जाते थे, जिन्हें शाकलिक, कार्दमिक तथा शैफालिक कहा जाता था[७]। कात्यायन ने हरिद्रा और महारजन नामक रंगों का भी उल्लेख किया है[८]।

गुप्त काल में लोकप्रिय विभिन्न रंग में रंगे दुकूल तथा रेशम के वस्त्र प्रचलन में थे। उदाहरणस्वरूप नीलांशुक[९], काषाय[१०], कुसुम्भरागारुणितैर्दुकूलैः[११], श्यामस्तनांशुक[१२] इत्यादि रंगीन वस्त्रों का उल्लेख कालिदास के साहित्य में हुआ है। गुप्तकालीन अजंता के चित्रों में स्त्री-पुरुषों को आकृतियों को रंग-बिरंगे वस्त्र पहने दिखलाया है। हर्षचरित से भी सुविकसित रंगाई उद्योग की झलक मिलती है।[१३]

१—मार्शल, जॉन, मोहनजोदाड़ो एंड इंडस वेली सिविलाइजेशन, भाग १, पृ० ३३, प्लेट ९८।

२—भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा अनुवादित महापरिनिब्बाण सुत्त, २, १८।

३—वही, पृ० ८२-८५।

४—महावग्ग, ५।१।१०, ८।२९।१ तथा डॉ० मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० ३४।

५—अग्रवाल, वा० श०, पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृ० २२१।

६—कुमार संभव, ३।५४; रघुवंश, ९।४३ तथा सोमेश्वर विरचित अभिलषितार्थ चिंतामणि, शामा शास्त्री द्वारा सम्पादित, पृ० २९६।

७—पाणिनी कालीन भारत वर्ष, पृ० २२२-२२३।

८—वही, पृ० २२२।

९—विक्रमोर्वशीय, पृ० ६८।

१०—रघुवंश, १५।७७।

११—ऋतुसंहार, ६।४।

१२—विक्र०, ६।१७।

१३—डॉ० अग्रवाल, हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पेरिप्लस से ज्ञात है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में ही भारत के पक्के और चटकीले रंगों वाले कपड़े एशिया और अफ्रिका के देशों में लोकप्रिय हो चुके थे। चौथी शती में लिखे गये बाइबिल के एक लैटिन संस्करण से उद्धरण देते हुए पोप ग्रेगरी दि ग्रेट (५९०-५०४) लिखते हैं 'ज्ञान की तुलना भारत के रंगे हुए वस्त्रों से नहीं की जा सकती'[१]।

मध्ययुग के साहित्य में उल्लिखित रंगाई सम्बन्धी विवरणों तथा अनेक प्रकार की रंगतों के नामों से इस उद्योग के क्रमिक विकास पर प्रकाश पड़ता है। क्षेमेन्द्र (९९०-१०६५) समयमातृका में रंगों की विशेषताएँ बतलाते हुए लिखते हैं कि कुसुम्भ कच्चा रंग होता है, कुमकुम की हल्की रंगत अच्छी लगती है, गहरी नहीं अच्छी लगती, लाख का रग गर्म होने पर पक्का चढ़ता है जब कि मंजिष्ठ ठंडे और गर्म दोनों ही स्थितियों में पक्का होता है, तेल काषाय का शत्रु है, हल्दी का रंग कच्चा परन्तु नील का रंग पक्का होता है[२]। नर्ममाला में एक स्थान पर क्षेमेन्द्र ने 'कमलाहरितच्छाया' (हरे रंग की एक रंगत) का उल्लेख किया है[३]।

क्षेमेन्द्र के समकालीन काश्मीरी लेखक विल्हण ने विक्रमांक देव चरितम् में एक स्थान पर गुजरात की स्त्रियों, की वेश-भूषा का वर्णन करते हुए गहरे नीले रंग की एक रंगत 'नील नीरदनिचोल' का उल्लेख किया है[४]।

गुजरात की विशेष प्रकार की जलवायु वहाँ रँगाई उद्योग के विकास के लिए सदा सहायक रही है। वहाँ की रंगी 'मंजिष्ट पट्टी' तथा 'रोचनिकोतपटी' की प्रशंशा की गयी है[५]।

मध्य युग में उत्तर भारत में लोकप्रिम अन्य रंगों में 'कुसुम', 'लौहितक', 'कालक' तथा 'शाकल' प्रमुख हैं।[६]

सोमेश्वर देव विरचित मानसोल्लास (१२ वीं शती) से मध्ययुग में उच्चवर्ग के लोगों की इस क्षेत्र में सुरुचि का सुन्दर परिचय मिलता है[७]। एक स्थान पर लिखा है कि राजाओं को ऋतुओं के अनुकूल वस्त्र पहनने चाहिए। वर्षा ऋतु में पहने जाने वाले वस्त्र लाल, मँजीठी, गुलाबी तथा भूरे रंग के होने चाहिए और शीतकाल में कुसुम या लाख में रंगे वस्त्र धारण करने चाहिए। इसी प्रसंग में रंग तैयार करने की वस्तुओं में मदार, लाख, कुमुम, हल्दी, नील तथा अभया का उल्लेख किया है, जिनसे लाल, पीले, नीले और हरे रंगों के अतिरिक्त सुरमई (निशा नील-मयानि), तोतई (शुकपिच्छ सवर्णानि), मोरपंखी इत्यादि रंगतें तैयार की जाती थी[८]।

१३वीं शती में मार्कोपोलो ने भारत के दक्षिणी तटवर्ती क्षेत्रों और गुजरात के उत्पादन तथा व्यापार का वर्णन करते हुए बड़े पैमाने पर नील की पैदावार तथा उससे रंग तैयार करने के तरीकों का उल्लेख किया है[९]।

प्राचीन गुजराती रास, फागू तथा वर्णकों से १५ शती से १७ वीं शती तक गुजरात में कुछ विशेष रंगों की लोकप्रियता का पता चलता है। मरकत जादर (पन्ने

१—स्मिथ, ए० डी० होवेल, दि डाइड एंड प्रिंटेड कॉटन्स ऑफ इंडिया, इंडियन आर्ट एण्ड लेटर्स, १४ सं० २, १९२०, पृ० ८६

२—समयमातृका (दुर्गा प्रसाद तथा का० पा० परब द्वारा सम्पादित, १८८८), ५।१६-२२ पृ० ३३-३४।

३—नर्ममाला (मधुसूदन कौल द्वारा संपादित), ११६१, पृ० ६

४—विक्रमांकदेवचरितम्, १८/९७

५—हेमचन्द्र रचित द्व्याश्रकाव्य, १८।२३, डॉ० मोतीचन्द्र, ज०इ०टे०हि० ५, पृ० १६

६—डॉ० मोतीचन्द्र, ज०इ०टे०हि० ५, पृ० १६-१७

७—अभिलषितार्थ चिंतामणि, १, पृ० २९३-९६

८—अभिलषितार्थ चिंतामणि १, पृ० २९३-९६

९—दि बुक ऑफ मार्कोपोलो, भाग २, पृ० ३७५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसा हरा रंग)[१], सुरंगीय जादर[२], नौरंगीय चुंदड़ी[३], कस्तूरिया[४] (कस्तूरी रंग की साड़ी), मेघौना[५] (मेघ के समान काले रंग का वस्त्र) इत्यादि इस युग के लोकप्रिय वस्त्र थे। पद्मावत में उल्लिखित मेघौना को ही संभवतः वर्णकों में मेघडम्बर या मेघावली तथा कीर्तिलता (विद्यापति रचित) में काजल-ग्रम्बर कहा गया है।

मुगल काल में रंगाई उद्योग उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच चुका था। विलियम मूरक्राफ्ट के अनुसार इस समय भारतीय रंगरेज ३०० से भी अधिक रंगतें तैयार करते थे[६]। इस समय शाही-कारखानों में रंगाई का एक अलग विभाग (रंग खाना)[७] होता था।

मुगल काल के अनेक ग्रन्थों से उस युग में प्रचलित रंगतों के नाम तथा उन्हें तैयार करने के तरीकों की जानकारी मिलती है। नुस्खखुलासतुल मजर्रबात नामक औषधि विज्ञान के एक ग्रंथ में सूती कपड़ों की रंगाई के ७७ तरीकों का विवरण दिया है जिससे ४८ रंगते तैयार की जाती थीं।[८]

१८वीं और १९वीं शती के साहित्य में रंगों की जो सूचियां मिली हैं उनको परिशिष्ट १ में दिया जा रहा है। इनके अतिरिक्त १९वीं शती के अंत में प्रकाशित रंगाई सम्बन्धी पुस्तकों में सैयद मुहम्मद हादी की 'लिखी ए मोनोग्राफ ऑन डाइज एंड डाइंग इन दि नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविंसेज एंड अवध (इलाहाबाद १८९६)' तथा एन० एन० बनर्जी की लिखी हुई 'डाइज् एंड डाइंग इन बेंगाल (कलकत्ता, १८९६)' इस क्षेत्र में विशेष रुप से सहायक हैं। १९वीं शती में ग्वालियर से प्रकाशित धीरजलाल बंसीधर जैन की 'भारतीय रंग भंडार' तथा सिलवर्ड की पुस्तक ए मोनोग्राफ ग्रान कॉटन फैब्रिक्स प्रोड्यूस्ड इन दि नार्थ वेस्टर्न प्रोविंसेज एंड अवध' में सूती कपड़ों के लिए रंग तैयार करने की विधि है।

कच्चे और पक्के दो प्रकार के रंग भारत में प्रचलित हैं। कच्चे रंग अपेक्षाकृत अधिक चटकीले होते हैं तथा कम समय में तैयार हो जाते हैं किन्तु एक या दो धोब के बाद कपड़ा सफेद निकल जाता है जब कि पक्की रंगाई की क्रिया लम्बी और जटिल होती है। इसमें अधिक परिश्रम और लागत की आवश्यकता होती है परन्तु एक बार रंगने के बाद कपड़े के फटने तक रंग फीका नहीं होता।

रंगों का वर्गीकरण

नीला, पीला और लाल ये तीन प्राथमिक रंग हैं। ये तीनों रंग विभिन्न वनस्पतियों और खनिज पदार्थों से तैयार किये जाते थे।

नीला रंग और उसकी रंगते नील, नीलाथोथा, जंगार इत्यादि तथा कुछ क्षारयुक्त पदार्थों से तैयार करली जाती थीं।

पीला रंग हल्दी, हरसिगार के फूल, कुसुम के फूल, गेंदा के फूल, टेसू के फूल, तून के फूल, अडूसा, लोध नासपाल इत्यादि से तैयार किया जाता था। फिटकरी और नासपाल, हल्दी एवं अडूसा के रंगों को पक्का करने के लिए प्रयुक्त होते थे। इनमें चूना, सज्जी, नीबू का रस,

१—प्राचीन फागू संग्रह (बी० जे० संडेसरा द्वारा संपादित, बड़ौदा, १९५५) २, २०।

२—वही, ६, ३९

३—वही, ६।५१

४—वर्णक समुच्चय, पृ० ३४; नेमिनाथ फागु, प्राचीन गुर्जर काव्यसंग्रह, पृ० ८५, १८ तथा गुर्जर रासावली, २।१८; पृथ्वीचन्द्र, चरित, प्रा० गु० काव्य संग्रह, पृ० १०२ तथा डॉ० मोतीचन्द्र, जर्नल ऑफ इंडियन टेक्सटाइल हिस्टरी ६, पृ० २६, ४१

५—पद्मावत, पृ० ३२९

६—इर्विन, जॉन, शॉल्स, लंदन १९५५, पृ० ६

७—चकत्ता-वश प्रकाश, ४३

८—नकवी, हमोदारवातून, डाइंग ऑफ कॉटन गुड्स इन दि मुगल हिन्दुस्तान, ज०इ०टे०हि० ७, पृ० ४७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेजाब, गेरू, कसीस, खटाई इत्यादि की कम या अधिक मात्रा मिलाकर पीले की अनेक गहरी या हल्की रंगते तैयार कर ली जाती थीं।

लाल रंग और उसकी विविध रंगतें कुसुम के फूल, मजीठ, पतंग की लकड़ी, आल, शिंजरफ, गेरू इत्यादि के साथ केला, सीपी या ढाक की राख, इमली, नीबू का रस, फिटकरी, चूना, सज्जी, हर्रे इत्यादि क्षारयुक्त पदार्थों को आवश्यक मात्राओं में मिलाकर तैयार कर ली जाती थीं।

उपर्युक्त तीनों रंगों के गहरे या हलके घोल में एक या अधिक बार कपड़ा डुबोकर कई रंगतें तैयार की जाती थीं। कुछ रंगते नीले और पीले, नीले और लाल तथा पीले और लाल के संमिश्रण से तैयार की जाती थीं।

कुछ खास रंगतों के लिए, बहेडा, आंवला, बबूल की छाल, चंदन की लकड़ी, कुचला के बीज, भिलावा के फूल, साल वृक्ष की छाल, मेंहदी, ईमली, माजूफल, अमलतास की छाल, सर्व की छाल, लहसौड़ा, तेंदु मकरकेंदी के फल, जामिन की छाल, गूलर की छाल, पीपल की छाल और जड़, कमेला के फल, मौलसरी की छाल, तुलसी की छाल, चंपा के फूल, अनार के छिलके, कचनार, लटकन, तून, कांकड़ा-सिंगी, रक्तचंदन, एसवर्ग के फूल, बंजनक (पिस्ता के फूल) कपूर कचरी, बाल छड़, छालछबीला, अमचूर, कुलिजान, लोध मुलैठी, कत्था, लाख इत्यादि वनस्पतियों से प्राप्त वस्तुओं के अतिरिक्त कसोस, तूतिया, मुलतानी मिट्टी, सुहागा, फिटकिरी, भंगर आदि का प्रयोग भी किया जाता था। कभी-कभी कुछ विशेष रंगतों के लिए दूध और मट्ठे की भी आवश्यकता होती थी।

उपर्युक्त वस्तुओं के अतिरिक्त उद्योग के विकास के लिए उपयुक्त जलवायु होना आवश्यक है। अनेक रंगतों को तैयार करने में सूर्य की रोशनी[१] और विशेष प्रकार के खनिज पदार्थ युक्त जल का महत्वपूर्ण हाथ होता है। इसी कारण कुछ स्थानों में जहाँ कुआँ और तालाब के पानी में यह गुण होता है वहाँ रंगरेजों की बस्तियाँ बसीं हुई मिलती हैं। उदाहरणस्वरूप अहमदाबाद में कांकरिया तालाब एवं दरियापुर की चंदन तलावड़ी के पास रंगरेजों की बस्तियाँ बसने का यही कारण था[२]। सांगानेर के समीप बहने वाली धुंध नदी भी वहाँ रंगाई और छपाई उद्योग के विकास में मुख्य रूप से सहायक सिद्ध हुई[३]। जलवायु के अंतर के कारण ही स्थान-स्थान की रंगतों में अंतर आ जाता है।

रंगतों के नाम

१८ वीं और १६ वीं शती के भारतीय साहित्य से[४] तथा जयपुर और बनारस के रंगरेजों से भारतीय रंगतों के अनेक नाम प्राप्त हुए हैं। इनमें से अनेक रंगतों के नाम बोल चाल की भाषा में प्रचलित न रहने के कारण पूर्णतः भुला दिए जा चुके हैं। भारतीय कारीगरों द्वारा दिए गये ये देशी नाम बहुत ही सटीक, सरल एवं रोचक हैं।

अधिकतर रंगतों के नाम फूलपत्तियों, फलों, मेवों, पशु-पक्षियों धातु एवं खनिज पदार्थों के रंगों के सादृश्य के आधार पर रखे गये हैं।

कुछ रंगतों के नाम उन वस्तुओं के आधार पर रख दिए गये, जिनसे वे तैयार होते थे। उदाहरणस्वरूप कुसुम्म से तैयार होने वाली रंगत 'कुसुम्भी' गेरू से तैयार होने वाली 'गेरूआ', मजीठ से तैयार होने वाली रंगत 'मजीठी', गेंदे से तैयार होने वाली गेंदई तथा मेंहदी से तैयार होने वाली रंगत 'हिनाई' कहलायी।

जलवायु के अंतर के कारण एक ही विधि से तैयार की जाने पर भी स्थान-स्थान की रंगतों में अंतर के कारण कुछ रंगतों के साथ स्थान का नाम जोड़ दिया जाता था, जैसे 'लखनवी उन्नावी, 'फर्रूखाबादी उन्नवीं',[५] 'लखनवी

१—बस्टोनोबी, जे० एच०, प्रिंसिपल्स ऑफ कलर मिक्सिंग, न्यूयार्क, १९४७, पृ० १०

२—रत्नमणिराव भीमराव, गुजरात नुं पाटनगरः अमदावाद, पृ० ५०९

३—मिश्रा, ललिता, सांगानेर प्रिंटिंग, मार्ग, भाग १८, संख्या १, १९६४, पृ० २५

४—देखिए परिशिष्ट—१

५—जैन, धीरजलाल बंसीधर, भारतीय रंग भंडार, पृ० ४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मकोईया', 'अलीगढ़ी मकोइया',[१] 'बनारसी ककरेजी' 'लखनवी ककरेजी'[२] इत्यादि। अलग-अलग स्थान के रंगरेजों की रंगाई पद्धति में भिन्नता होने के कारण भी कभी-कभी रंगतों में यह अंतर आ जाता था। अतः इस कारण भी रंगतों के साथ प्राय: स्थान का नाम जोड़ दिया जाता था।

कुछ विशेष रंगतों के नाम बादशाहों और विशिष्ट व्यक्तियों की पसन्द के कारण पड़ गये, जैसे 'अकबरी'[३], 'बादशाह पसन्द' इत्यादि[४]।

'दिलबहार', 'सूफियानी', अकिलखानी' आदि कुछ रंगतों के अरबी और फ़ारसी नाम हैं जो मुगल काल में रखे गए। हिन्दी में इनके समकक्ष नामों के अभाव के कारण सैयद मुहम्मद हादी का इस विषय में कहना है कि भारतीय रंगरेज, मुसलमानों के आगमन के पूर्व इन रंगतों से अपरिचित थे[५]।

एक ही रंगत में गहरे और हलके का अन्तर बतलाने के लिए 'गाढ़ा', 'गहरा', 'हलका' इत्यादि विशेषण जोड़ दिए जाते थे, जैसे 'गाढ़ा सिंदूरी', 'गहरा नीला', हलका कत्थई इत्यादि। हल्की रंगतों के साथ प्राय: 'नीम', 'हवा', या 'फूल' शब्द जोड़ देने को प्रथा थी जैसे, नीम प्याजी', 'हवागुलाबी', 'फूल अंगूरी' इत्यादि।[६] कभी-कभी 'दबता', 'बुझता' और खुलता आदि शब्द जोड़ कर भी रंगों की गहराई या चटकीलापन व्यक्त किया जाता था जैसे, 'दबता अबोरी', 'बुझता लाल', 'खुलता आसमानी' इत्यादि।

हल्के और गहरे का अंतर बतलाने के लिए अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग शब्द प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणस्वरूप राजस्थान में नीले और काले रंग की गहराई बताने के लिए 'बुर्ज' जोड़ा जाता है (बुर्ज संभवतः 'वज्र' का बिगड़ा हुआ रूप है) जैसे 'नीलाबुर्ज', कालाबुर्ज। ब्रजभाषा में लाल, पीले और हरे का चटकीलापन व्यक्त करने के लिए 'लाल चटक', 'पीरो छनक' और 'हरोचोयल' कहा जाता है। उसी प्रकार भोजपुरी में तेज लाल रंग को 'टुक-टुक लाल' तथा हरे को 'चहचक हरा' कहा जाता हैं। मैथिल भाषा में तेज लाल रंग को 'टुह-टुह लाल और चटकीले हरे को 'हरिहर कचोर' कहा जाता है।

यदि किसी रंगत से अन्य रंग की झलक मारती हो तो उसके नाम पहले दूसरे को जोड़ दिया जाता था। उदाहरणस्वरूप 'जर्द अमोआ', 'सुनहली अमोआ', 'स्याह किशमिशी', 'सब्जकिशमिशी', 'सब्ज कपासी', 'सुर्खीदार सुरमई' इत्यादि।

कच्चे और पक्के रंगों का भेद बताने के लिए पक्के रंग के साथ प्राय: 'करारी' शब्द जोड़ देने की प्रथा थी, जैसे 'गुलाबीकरारी' 'ऊदा करारी[७]' इत्यादि।

लाल, नीले, पीले रंगों की विविध रंगतों तथा उनके संमिश्रण से बनने वाली रंगतों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं। हिन्दी नामों के साथ-साथ उनके समकक्ष अंग्रेजी नाम भी दिए जा रहे हैं परन्तु कुछ शुद्ध भारतीय रंगतों के समकक्ष अंग्रेजी रंगतों के अभाव के कारण इन रंगतों को अंग्रेजी नाम देने में विद्वानों में मतभेद है। उदाहरणस्वरूप जमुरर्दी रंग के लिए अंग्रेजी नाम जगदीश मित्तल 'ग्रास

१—हादी, सैयदमुहम्मद, ए मोनोग्राफ ऑन डाईज एंड डाइंग इन दि नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविसेंज एंड अवध, पृ० २९-३०

२—वही ३—नकवी, हमीदा खातून, ज०इ०टे०हि०, ७ पृ० ४५

४—तेलगू भाषा में भी कुछ नाम व्यक्तियों के नाम से सम्बन्धित हैं। उदाहरणस्वरूप दमयंतीपच्चा (हरे की रंगत), सीता पच्या (यह भी हरे की ही एक रंगत होतीहै), कृष्णचाया (गहरा नीला), रत्नावली रंगु (नीले की एक रंगत) इत्यादि।

५—हादी, पृ० २

६—मित्तल, जगदीश, हिन्दी में रंगों की नामावलो, कल्पना (हैदराबाद से प्रकाशित मासिक पत्रिका), १९५३; इसी प्रकार के विशेषण अंग्रेजी रंगों के साथ मिलते हैं जैसे—डीप, डार्क, मिडियम, लाइट इत्यादि; रंगों की शुद्धता बतलाने के लिए अंग्रेजी में 'ब्राइट', 'क्लीयर', 'प्योर', 'रिच्', 'वार्म' इत्यादि विशेषण प्रयुक्त होते हैं, देखिए मेसर्ज एंड पाल, डिक्शनरी ऑफ कलर, १९३० पृ० ७९।

७—नकवी, हमीदा खातून, 'डाइंग ऑफ कॉटन गुड्स इन दि मुगल हिन्दुस्तान, 'ज०इ०टे०हि०, संख्या ६, पृ० ४९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रीन[१]' तथा सैयद मुहम्मद हादी 'पीकॉक ग्रीन[२]' बतलाते हैं। उसी प्रकार 'शर्बती' को जगदीश मित्तल 'लाइट सेयना' कहते हैं[३], हादी 'लाइट बफ' कहते हैं[४] तथा बनर्जी 'पिंकिश येलो' कहते हैं[५]।

१—अब्बासी (स्मोक ब्लू)
२—आबी (लाइट ब्लू)
३—आसमानी (स्काई ब्लू)
४—झंगरी (टरक्वाइज़ ब्लू)
५—फिरोजी (टरक्वाइज़)
६—मोरपंखी या मोरगर्द (पीकॉक ब्लू)
७—विष्णुकरंती या विष्णुकांति (सेरूलियन)
८—लाजवंती (कोबाल्ट)
९—लाजवर्दी (अलट्रा मेहराइन)
१०—नीला (इंडिगो ब्लू)
११—अधरंगा नीला (डीप ब्लू)[६]
१२—नीला बुर्ज (राजस्थान गहरे नीले की एक रंगत के लिए यह नाम प्रयुक्त होता है)
१३—सुरमई (ब्लूब्लेक या लेड कलर)
१४—कपूरी या काफूरी (कामफर या डल ह्वाइट) : पीली झलक लिए हुए सफेद।
१५—काफूरी-संदली[७] : चंदनी झलक लिए हुए सफेद।
१६—सूफ़आनी या सोफ़यानी : नाम मात्र को पीली झलक लिए हुए[८]। सैयद मुहम्मद हादी इसे हल्के भूरे (लाइट ब्राउन) की एक रंगत बतलाते हैं।[९]
१७—गुलेपुम्ब (प्रीमरोज) : कपास के फूल या पीले गुलाब के समान हल्की पीली रंगत।
१८—मखनिआ (क्रीम) : इसी रंगत को संभवतः सैयद मुहम्मद हादी ने मलाई' कहा है।[१०]
१९—केवड़ई (क्रीम) : केवड़े के फूल के समान हल्की पीली रंगत।
२०—मुलतानी (क्रीम) : मुलतानी मिट्टी के समान हल्की पीली रंगत।
२१—पोखराजी : पोखराज के समान हल्का पीला।
२२—कपासी या कोकटी (रॉ सेयना[११] या केनेरी[१२]) : नरमा या कोकटी रुई के समान कत्थई की ओर झुकता हुआ पीला।
२३—सब्जकपासी : कुछ हरापन लिए कपासी।
२४—इलायचिआ : कपासी से भी हल्की पीली रँगत[१३]।
२५—मटपीला या मटियाला (बफ) : मटमैला पीला।
२६ टसरी या गरदी (ड्रॉब) : तसर रेशम के समान मटमैला पीला।
२७—जर्द : अंडे की जर्दी के समान पीला रंग।

१—'मित्तल, जगदीश, हिन्दी में रंगों की नामावली, कल्पना, १९५३
२—हादी, पृ० २०
३—मित्तल, वही,
४—हादी, पृ० १८
५—बनर्जी, पृ० २१
६—हादी, पृ० ९
७—खुलासतुत मुजर्रबात की रंगों को सूची में यह नाम है, हमीदा खातून नकवी, ज०इ०टे०हि०, ७ पृ० ५६।
८—मित्तल वही।
९—हादी, पृ० २७।
१०—हादी, पृ० ४१
११—मित्तल. वही पृ० ११२
१२—हादी, पृ० १२
१३—हादी, पृ० १२, फु० नो० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२८—खट्टा[1] : यह रंग सम्भवत : खट्टा नीबू के समान पीला होता था ।

२९—कमलई : कमला नीबू के समान पीला रंग ।

३०—वसंती (क्रीम येलो): सरसों के फूल के समान पीला रंग ।

३१—हर्ताली (सलफर येलो): हर्रे के चूर्ण से तैयार पीला रंग ।

३२—गंधकी (पेल येलो या सलफर येलो): गंधक के समान तेज पीला ।

३३—गुलेतुराई[2] : तुराई के फूल के समान चटकीला पीला रंग ।

३४—तोरूफूला[3] : चटकीला पीला रंग ।

३५—कनेरी : कनेर के फूल के समान पीला ।

३६—अमलतासिया (क्रिम्स येलो या लाइट क्रीम येलो): अमलतास के फूलों के समान पीला रंग ।

३७—नीबुआ (लेमन येलो)

३८—खरबूजी: पीले खरबूजे के समान पीला रंग ।

३९—एसबर्ग (गम्बोज)[4] : एसबर्ग नामक पौधे से तैयार होता था ।

४०—पेवड़ी : कई दिनों तक गाय को केवल आम के पत्ते खिलाते हैं। उसके मूत्र से तैयार की हुई पीली मिट्टी पेवड़ी कहलाती है। इसमें कपड़ा रंगने के बाद कपड़े की बदबू दूर करने के लिए कुछ देर दूध में भिगो दिया जाता था[5] ।

४१—बिरंजी[6] (ब्रास येलो) : पीतल के समान पीला रंग

४२—गेंदई (मेरिगोल्ड) : गेंदे के फूल से तैयार किया गया पीलारंग ।

४३—चम्पई (मेगनोलिया) : चम्पा के फूल से समान पीला रंग ।

४४—कोलई[7] : पके कोहड़े के समान केसरी (गोल्डेन येलो)

४५—नासपाली या अनारी (गोल्डेन येलो) : अनार के छिलकों को उबाल कर तैयार किया हुआ सुनहला पीला ।

४६—सुनहली (गोल्डन येलो)

४७—सोनौला (औरेंज :—सिलबर्ड ने सोनौला तथा सुनहला का अलग उल्लेख किया है[8] ।

४८—जर्द चमेलिया (गोल्डन येलो)[9]: यह भी सुनहरे पीले की ही एक रंगत है ।

४९—बदामी (आलमंड)

५०—बिसकुटी : गहराबदामी रंग ।

५१—तिरमोढी[10] (येलो ब्राउन) : पीले ततैये के समान रंग ।

५२—तूसी (हस्क[11]) : धान के छिलके के समान सुनहला पीला ।

५३—अमरसी : पके आम के रस के समान केसरिया पीला रंग ।

५४—केशरी, केसरिया या जाफरानी (सफ्रान येलो)

१—यह नाम डब्लू० एम० हाले के लेख 'सिल्क इंडस्ट्री इन पंजाब', (जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट, भाग १०, पृ० १५) में उल्लिखित है ।

२—खुलासतुल मुजर्रबात की रंगसूची, ज०इ०टे०हि० ७, पृ० ५६

३—यह नाम सांगानेर के छीपाओं से ज्ञात हुआ ।

४—मित्तल, वही

५—भारतीय रंग भंडार, पृ० ५६

६—आईने अकबरी, आईन ३२

७—युसुफ अली, पृ० ४५

८—सिलबर्ड, पृ० ३८

९—हादी, पृ० १६ तथा भारतीय रंग भंडार, पृ० ४१

१०—मित्तल, वही

११—हादी इसे स्लेटी की एक रंगत बतलाते हैं, पृ० २१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५५—अरगजी (काडमिअम) : पीला रंग जैसा कि केशर, चंदन और कपूर मिलाने से होता है।[१]
५६—नारंगी, संतरई या नारंजी (आरेंज)
५७—सिंदूरिया, सिन्दूरी (वर्मिलियन)
५८—मकोइया (रस्ट या डार्कप्लम): सुनहला पीला रंग। अलीगढ़ और लखनऊ में इस रंग की अलग-अलग रंगतें होती थी, जो 'अलीगढ़ी मकोइया' तथा 'लखनवी मकोइया' कहलाती थीं[२]।
५९—चंदनी या चंदनई (संडल)
६०—संदली (लाइट ब्राउन[३] या रा अम्बर)
६१—हरसिंगारी : हरसिंगार के फूलों से तैयार किया हुआ पीला रंग।
६२—अमौआ : विभिन्न जाति के आमों का रंग भिन्न-भिन्न होता है। अतः इस रंग की अनेक रंगतों के नाम मिलते हैं, जैसे-सुनहली अमौआ, अनारी अमौआ, शुतरी अमौआ, जर्दी अमौआ या जर्द अमौआ, कथराई अमीआ, सेवती अमीआ, कोयली अमीआ, कचराई अमौआ, सुर्ख अमौआ इत्यादि।
६३—गेरुआ, भगवा, भगुआ, या जोगिआ (आकर)[४]
६४—गुटेई (ब्रिकरेड या वेनिशियन रेड) : ईट जैसा पीलापन लिए लाल रंग या कत्थई झलक लिए नारंगी रंग।
६५—टमाटरी (टोमेटो रेड) पके टमाटर के समान पीलापन लिए लाल
६६—शिंगरफ़ी, हिंगुल या ईंगुरी (स्कारलेट ब्रिक)
६७—सतपूतरी (रेड)[५]
६८—सूहा (ब्राइटरेड) : चमकदार लाल रंग।
६९—गुलेअनारी या गुलअनारी : अनार के फूलों के समान चमकीला लाल रंग।
७०—मूगा या मूगिआ (कोरल) :मूगे जैसा लाल रंग।
७१—महावरी (डीप कामाइन) : महावर से तैयार किया लाल रंग।
७२—लाखी (डीप कार्माइन) : लाख से तैयार होने वाला रंग। पानीपत में संभवतः इसकी कोई विशेष रंगत तैयार की जाती थी, जो 'पानीपत लाखी' के नाम से प्रसिद्ध थी[६]।
७३—कसूंबी, कुसुम्बी, कसूमी या कसुमल (क्रिमसन मेरून) : कुसुम्ब के फूलों से तैयार लाल रंग।
७४—सुर्ख कुसूंबी : लाल झलक लिए कुसुंबी।
७५—मजीठी (मेडर या डीप क्रिमसन) : गुलाबी झलक लिए हुए गहरा लाल।
७६—सुर्ख (रेड) : चटकीला लाल।
७७—सुलतानी सुर्ख[७] (स्कारलेट) : गहरा लाल।
७८—तुर्की सुर्ख (टर्की रेड) : काली झलक लिए लाल।
७९—पतंगी : पतंग की लकड़ी से तैयार होने वाला लाल रंग।
८०—खूनी (ब्लड रेड) : ताजा खून के समान चटक लाल।
८१—अग्रवानी (फायररेड) : आग की लपटों के समान लाल[८]।
८२—आतशी या आतिशी (फायर रेड या डीप रेड) आग की लपटों के समान लाल!
८३—महदिया, मेंहदिया या हीनाई (सेयना) : मेंहदी के पत्तों से तैयार होने वाला लाल रंग।
८४—जिलानी[९] : लाल की एक रंगत।
८५—सालू (ब्राउन रेड) : बुझता गहरा लाल रंग।

१—मित्तल, वही पृ० ३१७
२—हादी, पृ० ३०
३—वही, पृ० २६
४—हादी गेरूआ का समकक्ष अंग्रेजी नाम 'बफ' बतलाते हैं, हादी, पृ० १२ तथा जगदीश मित्तल 'सामन' बतलाते हैं।
५—मित्तल, वही।
६—यह नाम १९वीं शती के काव्य 'जमुना तरंगिनी' में आया है। देखिए—परिशिष्ट १
७—युसुफ अली, पृ० ४५
८—हादी इसे 'मेरून' की एक रंगत बतलाते है, हादी पृ० २७।
९—हादी, पृ० २७ तथा भारतीय रंग भंडार, पृ० २७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५५—गन्नई या पौड़ई[१] (साप ग्रीन): हरे गन्ने के समान हरा।

१५६—जुमरर्दी या ज़मुरर्दी (पीकॉक ग्रीन[२]): नीलापन लिए हरा।

१५७—बोतली (बोटल ग्रीन): हरी बोतल के समान कालापन लिए हरा।

१५८—तरबूजी (वाटरमेलन): तरबूजे के छिलके की भाँति हरा।

१५९—जहरमोहरा : जहर मोहरे के समान काली झलक लिए नीला हरा।

१६०—जहरी (वेरोनीज़): नीलापन लिए गहरा हरा।

१६१—माशो या मासी[३]: उरद के छिलके की भाँति कालापन लिए हरा रंग।

१६२—तेलिया माशी (ओलीव ग्रीन): हरी उरद के समान कुछ पीलापन लिए माशी।

१६३—हरा करंजई (मर्टल): कच्चे करंजुए के समान हरा।

१६४—करंजुई या करंजुआ (बीवर ग्रे): करंजुए के फल जैसा रंग।

१६५—गोबरई: गोबर जैसा गहरा जैतूनी रंग।

१६६—शिकारी (ओलीव ग्रे)

१६७—खाकी

१६८—फौजी खाकी

१६९—कथिया खाकी[४] (स्लेट ड्राब)

१७०—दुधिआ खाकी[५]

१७१—अकिलखानी (ड्राब)[६]। लखनऊ तथा अलीगढ़ में इसके रंगने के ढंग में अन्तर होने के कारण संभवतः रंगत में भी भिन्नता होती थी। अतः ये रंगते 'अलीगढ़ी अकिलखानी' और 'लखनवीं अकिलखानी' कहलाती थी[७]।

१७२—जस्तई (जिंक या इंग्लिश सिलवर): जस्ते जैसा रंग।

१७३—चूहा रंग (माउस): चूहे जैसा भूरा रंग।

१७४—जिरयाई या जीराई[८]: जीरे के समान भूरा रंग।

१७५—स्लेटी या सलेटी: स्लेट पत्थर के समान गहरा भूरा।

१७६—कुलफी (पेनीज़ ग्रे): स्लेटी से गहरा भूरा।

१७७—दौदिया: राख से हलका भूरा रंग।

१७८—नुकरई (सिलवर ग्रे[९]): हलका भूरा।

१७९—राखी या राखोड़ी: राख के समान भूरा।

१८०—कबूतरी: कबूतर के पंख के समान भूरा।

१८१—फाख्ताई (डोव या स्टोन ड्राब): फाख्ता पक्षी के समान भूरा रंग।

१८२—कंजई (स्मोक ग्रे या ऐश ड्राब): कंजी आँखों के समान भूरा रंग।

१८३—दुधिया कंजई (पर्ल ग्रे)

१८४—शुतरी (केमेल या लाइट काटेचू): ऊँट के जैसा भूरा रंग।

१८५—शबंती (लाइट सेयना या लाइट बफ या पिंकिश येलो)

१—हादी, पृ० १९

२—जगदीश मित्तल इसके लिए अंग्रेजी नाम 'ग्रास ग्रीन' देते हैं। जब कि हादी 'पीकॉक ग्रीन' बतलाते हैं। हादी, पृ० २०

३—बनर्जी, एन० एन०, पृ० २२

४—हादी, पृ० १२

५—वही

६—वही, पृ० २७

७—भारतीय रंग भंडार, पृ० ४६

८—यह नाम जयपुर के रंगरेजों से प्राप्त हुआ।

९—सिलबर्रड, पृ० ३९ तथा देखिए बुंदेलखंडी फाग, परिशिष्ट १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८६--साबरी : साबर के चमड़े की भाँति बदामी से मिलता जुलता ।

१८७--गेहुँआ (ह्वीट) : गेहूँ के समान ।

१८८--मलयागिरी या मलागीरी (ब्राउन आकर) : सुनहला कत्थई रंग जो कई रंगों के समिश्रण से बनता था । यह रंग अवध के नवाबों में बहुत लोकप्रिय था[१] ।

१८९--दालचीनी (सिनामोन) : दालचीनी जैसा कत्थई रंग ।

१९०--लौंगिआ (क्लोव) : लौंग के समान गहरा कत्थई ।

१९१--कस्तुरिया[२] या मुश्की : कस्तुरी के समान कत्थई । संभवतः आईने अकबरी में इसी को 'मुश्की'[३] रंग कहा है ।

१९२--खटमली (डार्क ब्राउन[४]) : खटमल के समान कत्थई

१९३--कोचकी (काफी ब्राउन) : काफी के समान गहरा कत्थई ।

१९४--चुनौटिआ (चॉकलेट) : चॉकलेट जैसा गहरा कत्थई ।

१९५--चौकलेटी (चॉकलेट) : नयी पीढ़ी के रंगरेजों में यह नाम प्रचलित है ।

१९६--हिरमिची या हरमुची (डीप इंडियन रेड) : हिरमिची मिट्टी जैसा स्याह सुर्खी लिए कत्थई रंग[५] ।

१९७--किसमिसी या किशमिशी (वर्नट-अम्बर) : किसमिस जैसा हल्का कत्थई रंग ।

१९८--स्याह किशमिशी (वानडाइक ब्राउन) : कालापन लिए किशमिशी ।

१९९--सुर्ख किशमिशी (स्नेक ब्राउन) : कुछ लाल झलक लिए किशमिशी ।

२००--सब्ज किशमिशी (नटब्राउन) : नयी किशमिश के समान हरी झलक लिए किशमिशी ।

२०१--जोज़ी[६] या जोजई (वालनट) : अखरोट के समान कत्थई रंग ।

२०२--कत्थई (कटेचू) : कत्थे के समान ।

२०३--अगरई या अग्रई (डीप कटेचू) : गहरा कत्थई[७] ।

२०४--सब्री[८] : गहरे कत्थई की एक रंगत ।

२०५--अंबरी : अंबर की तरह कत्थई ।

२०६--सूंघनी, सुंघनी, नासी, नसवारी या हुलासी (स्नफ) : गहरा कत्थई ।

२०७--कथिआ ककरेजी (डार्क प्लम) : कालापन लिए ककरेजी ।

२०८--नखूड़ी (ग्राम[९]) : कत्थई की एक रंगत ।

२०९--सफेद (ह्वाइट)

२१०--दुधिआ (मिलकी[१०]) : दूध के समान नीली झलक लिए सफेद ।

२११--सेवती : सेवती के फूल के समान सफेद रंग ।

२१२--स्याह भूरा : बहुत गहरा भूरा जो कि काले के समान लगता हो ।

२१३--बबूरा[११] : यह भी गहरे भूरे की रंगत है ।

२१४--सांपिआ (स्नेकब्लेक) : काले सांप के समान काला

२१५--कालाबुर्ज : शुद्ध गहरा काला ।

१--यह रंगत लगभग २०-२१ वनस्पति और खनिज पदार्थों के संयोग से बनती थी । हादी, पृ० २७

२--गुजराती वर्णकों तथा पृथ्वीचन्द चरित में 'कस्तूरिया' कपड़े का उल्लेख है ।

३--आईने-अकबरी, ३२

४--हादी, पृ० ४०

५--मित्तल, वही

६--चकत्तावंश प्रकाश, ४३ तथा खुलासतुल मुजर्रबात, ज० इ० टे० हि० ७, पृ० ५३

७--हादी, पृ० २३

८--वही

९--खुलासतुल मुजर्रबात, ज०इ०टे०हि० ७; पृ० ५६

१०--गुजराती में 'दुधिया' लौकी के समान हरे रंग को कहते हैं ।

११--हादी, पृ० २२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२१६—कोयली या कोयलिया : कोयल जैसा तेज काला।
२१७—स्याहतब (जेट ब्लेक[१])।

उपर्युक्त रंगतों के अतिरिक्त कुछ अन्य रंगतों के नाम भी मुगल काल के ग्रन्थों में मिलते हैं, जिनके विषय में निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि ये किस प्रकार की रंगत होती थीं। उदाहरणस्वरूप अकबरी[२] मुबारक शमाई[३] कमनुमा[४], सोफ़ी[५], संकरी[६], सोंथली[७], तुरंजी[८], कयासी[९], तारैजी[१०] कावाली,[११] सुस्तई[१२], इत्यादि।

१८वीं शती के साहित्य में 'समुद्र लहर' कपड़े का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है[१३]। जगदीश मित्तल के अनुसार यह हरे रंग की एक रंगत होती थी[१४]। परन्तु रंगाई सम्बन्धी पुरानी पुस्तकों के अनुसार 'सतरंगी लहरिया' को समुद्र लहर कहा जाता था[१५]।

दो रूखीं रंगाई :

अलवर[१६] एवं ग्वालियर आदि कुछ केन्द्रों में दोरूखी रंगाई की जाती थी। इसके लिए साधारणत: मलमल या अन्य प्रकार के महीन सूती कपड़े प्रयुक्त होते थे। इन्हें पहले ग्वार के पट्टे के ताजे रस में गीला करके एवं सुखाकर कड़ा कर लिया जाता था[१७] तथा इसी के रस में दो मनपसंद रंगों को अलग-अलग मिलाकर गाढ़ा घोल तैयार कर लिया जाता था। अब एक बड़ी मेज या चौकी पर कपड़े को बिछा कर और कपड़े के एक टुकड़े में रंग लेकर उस पर चढ़ा दिया जाता था। सूखने पर कपड़े को उलट कर दूसरी ओर दूसरा रंग उसी प्रकार चढ़ा दिया जाता था।

१—हादी, पृ० २३
२—खुलासतुल मुर्रबात, ज०इ०टे०हि० ७, पृ० ५४ तथा ५५। संभवतः अकबर बादशाह को यह रंग अधिक पसंद होने के कारण इसका यह नाम पड़ा।
३—वही, पृ० ५६ ४—वही ५—वही, पृ० ५४
६—चकत्तावंश प्रकाश, ४३
७—सरस्वती अंक ३, सं० २, १९२५
८—चकत्तावंश प्रकाश, ४३
९—वही
१०—वही
११—वही
१२—एक बुंदेलखंडी फाग में इसका उल्लेख है, देखिए, परिशिष्ट १
१३—"समुँद्र लहरि सोहे तन चीरू", पद्मावत (डॉ० अग्रवाल), पृ० ११३
१४—मित्तल, कल्पना, वही
१५—भारतीय रंग भंडार, पृ० ४८
१६—अलवर में रंगे हुए दोरूखी वस्त्र के लिए देखिए, टॉमस वार्डलै, जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट, भाग १, सं० १५, फलक १०
१७—कहीं-कहीं ग्वार के पट्टे के रस के स्थान पर आरारोट की लेई भी इस कार्य के लिए प्रयुक्त होती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बंधेज या बाँधणी

बंधेज, बांधनू या बाँधणी पद्धति से बने वस्त्र भारतीय रंगाई कला की सुविकसित अवस्था के द्योतक हैं। हर्ष-चरित, अजन्ता के भित्ति चित्र तथा मध्य युग के साहित्य एवं चित्रों से प्रमाणित है कि चुनरी और लहरिया के वस्त्र विभिन्न युगों में सम्पूर्ण उत्तर भारत में लोकप्रिय रहे हैं। इन वस्त्रों को तैयार करने में अत्यधिक परिश्रम, समय, अनुभव एवं कार्यकुशलता की आवश्यकता होती है[1]।

बंधेज के लिए सामान्यतः मलमल, अद्धी या रेशमी कपड़े प्रयुक्त होते हैं। इनकी बाँधने एवं रंगने की पद्धति संक्षेप में निम्नलिखित हैं :

कपड़े की कई तह करके उस पर लकड़ी के ठप्पों द्वारा गेरू से भाँतों की रेख छाप दी जाती है। अब यह कपड़ा बाँधने के लिए दे दिया जाता है। बाँधने का कार्य प्रायः सभी स्थानों में स्त्रियाँ करती हैं, जो राजस्थान में 'बाँधण-हारी' और गुजरात में 'बांधनारी' कहलाती हैं। गेरू से छपी हुई रेखाओं के आधार पर ये उंगलियों के नाखूनों से कपड़े का छोटा सा हिस्सा लेकर सूती धागों से बांधती जाती हैं[2]। सभी रेखाओं पर बांधने का कार्य पूरा हो जाने पर कपड़ा रंगरेज को दे दिया जाता है। आवश्यक रंग में रंगने के पश्चात धागे खोल दिए जाते हैं और तब दूसरी बार रंगने के लिए भाँतों का बचा हुआ अंश छाप दिया जाता है। बांधनहारी पुनः इसे बांधकर रंगरेज को लौटा देती है। इस प्रकार जितने रंगों में बूँददार रेखाओं से भांतें उभारनी होती हैं उतनी बार यही क्रम चलता है। रंगाई हल्के रंग से प्रारम्भ की जाती है। उदाहरण-स्वरूप यदि लाल जमीन में सफेद और पीली बूंददार भांते उभारनी हैं तो बंधे हुए कपड़े को पहले पीले रंग में रंगा जाएगा और तब पुनः बांधकर लाल रंग में रंगा जाएगा। जमीन के रंगों में मुख्य रूप से हरा, लाल, कत्थई जैसे गहरे रंग प्रचलित हैं। बांधने के ढंग में अंतर करके बूंद कई आकार की बनाई जा सकती हैं जैसे चौकोर, पंचकोण, सतकोण इत्यादि।

वस्त्र सज्जा की उक्त पद्यति न्यूनाधिक मात्रा में लगभग सम्पूर्ण भारत में प्रचलित पायी जाती है परन्तु गुजरात और राजस्थान में इसका सर्वाधिक निखरा हुआ रूप देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त काठियावाड़ और कच्छ में भी कही कहीं श्रेष्ठ प्रकार की बांधणी बनाई जाती है। इस अध्याय में गुजरात और राजस्थान की बांधणी या चुनरी का वर्णन किया जा रहा है।

गुजरात

गुजरात में चुंदड़ी, पोमचा, बांधणी, घरचोला और घाटड़ी आदि बंधेज पद्धति से तैयार किए जाने वाले वस्त्रों के विविध प्रकार हैं, जिन्हें विभिन्न त्योहार तथा मांगलिक प्रसंगों पर पहनना महत्वपूर्ण समझा जाता है। विवाहित स्त्रियों के लिए इनका पहनना सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है।

गुजरात में इसके प्रमुख केन्द्र पाटण[3], जामनगर, राज-कोट, अहमदाबाद, खंभात, सुरत, बड़ौदा इत्यादि

१—वाँट के अनुसार वस्त्रों को अलंकृत करने की यह पद्धति उसी देश में विकसित हो सकती है जहाँ मानव श्रम तथा खाद्यपदार्थ अत्यकि सस्ते हों, वाँट, पृ० २५२

२—बांधनहारियाँ महीन काम करने के उद्देश्य से हाथ के नाखून बढ़ाकर रखती हैं।

३—गुजरात के लोक गीतों से ध्वनित है कि पाटण में बहुत उत्तमकोटि की चुनरी रंगी जाती थी। एक विवाह गीत में नाखून में समा जाये उतनी हल्की चुनरी का उल्लेख हुआ है—

"पाटण रंगी रायनी चुंदड़ी,
मारा नखना समाय तेवी चुंदड़ी,
लाड़कवाई ओढ़ो ने रायजादी चुंदड़ी।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नगर रहें हैं। इन सभी स्थानों में बांधने का काम मुसलमान स्त्रियां करती आ रही हैं[1]। रंगाई का काम भावसार जाति के लोग करते हैं[2]। गुजरात में बनने वाले बंधेज के विविध प्रकारों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

चुनड़ी (चुनरी) :

बंधेज के हल्के काम वाले वस्त्रों को चुनड़ी कहा जाता है। कम समय और कम परिश्रम में तैयार होने के कारण चुनड़ी बंधेज के अन्य प्रकारों की अपेक्षा सस्ती होती है। सावन के त्यौहार[3] तथा देवी से सम्बन्धित उत्सवों[4] पर कन्याएँ एवं विवाहित स्त्रियां इसे पहनती हैं। सामान्य वर्ग के लोगों में अत्यधिक लोकप्रिय वस्त्र है।

चुनड़ी की भांतें सरल और मोटी होती हैं। इनमें फूल-पत्ती का अलंकरण तथा तोता, मोर आदि की बड़ी-बड़ी आकृतियाँ सम्मिलित हैं। कुछ चुनड़ियों में कोई आकृति न बनाकर केवल एक या दो रंग की बूदों का घना भराव कर दिया जाता है। बूंद बड़ी होती है। इनमें अधिकतर आंचल और किनारा भिन्न रंग का होता है। साधारणतः जमीन गहरे लाल रंग की एवं आंचल और किनारा हरे रंग का होता है। जमीन के लिए कत्थई रंग भी लोकप्रिय रहा है। साड़ी, ओढ़नी तथा पगड़ी के रूप में चुनड़ी प्रचलित है। आज भी कच्चे और पक्के दोनों रंगों में रंगी जाती है।

पोमचो :

यह विशेष भांत की साड़ी या ओढ़नी होती है, जिसमें आंचल और किनारा भिन्न रंग का तथा बीच में बड़े-बड़े वृत्तों में बूँददार अलंकरण रहता है। इसमें भी चुनड़ी के समान लाल, हरा और पीला रंग प्रयुक्त होता है। विवाह के समय वर-वधू की माताएँ इसे ओढ़नी के समान पहनती हैं। इस अवसर पर संभवतः काली भांत के पोमचा का विशेष महत्व था[5]।

बांधणी, बांधणुं या घरचोला :

यह बंधेज के वस्त्रों का कीमती प्रकार हैं। विवाह अठमासा या अन्य बड़े मांगलिक प्रसंगों पर विवाहित स्त्रियों द्वारा पहने जाने वाले कीमती वस्त्रों में इनकी गणना होती है[6]। इनमें भांतें बहुत घनी और बारीक बूँदों द्वारा बनी होती है। प्रायः चारखानों में हाथी, मोर, तोता, सखी और कमल आदि की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। प्रत्येक चारखाना 'घर' कहलाता है। संभवतः इसी कारण ये साड़ियाँ 'घरचोला' कहलाने लगीं। कीमती घरचोला में में घर (चारखाने) सुनहली जरी के तारों से बने होते हैं तथा आंचल भी जरी का होता है। विवाह में कन्या को चादर के रूप में दोहरी तह करके उढ़ाया जाता है[7]।

घाटडी या घाटपोत :

बंधेज के काम की रेशमी साड़ी घाटडी कहलाती है। विशेष रूप से विवाह की साड़ी होने के कारण इसे भी 'पानेतर' कहा जाता है। कुछ स्थानों में घाटपोत कहलाती है। काठियावाड़ में इस प्रकार की विवाह की साड़ियां

१—नारीगरा, महावजी भाई साजन भाई, रगवानी कला, पृ० ६८ तथा देखिए कापड़िया, इंदिरा हीरालाल, प्राचीन अने अर्वाचीन समय नी स्त्रीओनो पहेरवेश, सूरत, १९३८, पृ० ४१

२—वही

३—वर्षा ऋतु में गाए जाने वाले लोकगीतों में इसका उल्लेख बहुतायत से हुआ है-"झीणी झरझर बरसे मेह, भीजे मारी चुंदलड़ी।"

४—सुहाग का प्रतीक होने के कारण देवी की वेशभूषा के प्रमुख अंग के रूप में गरबा गीतों में इसका उल्लेख हुआ है। कुछ स्थलों पर 'नवरंग चुंदड़ी' का उल्लेख है—जो सम्भवतः नौरंगों में रंगी जाने के कारण कीमती समझी जाती थी।

५—यह एक परम्परागत विवाह गीत से ध्वनित है "काली ते भातनो पोमचो रे, कालो चन्द्रकला होय मारी बेवण, गोरब वहेला जमवा आवजो रे," स्त्रीओनो पहेरवेश, पृ० ६५

६—१७-१८ वीं शती के गुजराती काव्यों में भी विवाहित स्त्रियों के लिए घरचोला का उल्लेख हुआ है :—

(अ) 'श्याम कुंवर सोनेरी सालु गुण कुंवर घरचोलु जी' प्रेमानंद कृत काव्य 'कुंवरबाई नु मामेरूं' से।

(ब) 'घरशाडी घरचोला अणावो, ने पाटणनीज पटोलीजी' पुरी बाई कृत काव्य 'सीता मंगल' से।

७—'परणेतर' (वधू) को उठायी जाने के कारण कहीं-कहीं पर यह 'पानेतर' भी कहलाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'सिरीख' कहलाती हैं।[१] इसके लिए अच्छे प्रकार की रेशमी सफेद साटिन की साड़ो काम में लायी जाती हैं, जिसमें किनारा और आंचल गहरे लाल रंग का होता है तथा जमीन में लाल रंग के 'गल' (वृत) बने रहते हैं। इन लाल हिस्सों में बांधनू पद्धति से सफेद बूंददार भांतें उभारी जाती हैं। कभी-कभी साड़ी की पूरी जमीन उन्नावी रखी जाती है जिसमें सफेद बूंददार भांतें रहती हैं। इस प्रकार की रेशमी बांधनियों के लिए खंभात प्रसिद्ध था।[२]

राजस्थान

राजस्थान में विविध रूप में बंधेज के वस्त्रों का उपयोग होता है। यहाँ साड़ी, ओढ़नी दुपट्टा, पगड़ी और साफा के अतिरिक्त पहनावे के लिए भी बंधेज पद्धति से वस्त्रों को रंगने की प्रथा रही है। इस पद्धति से रंगे अंगरखें तथा लहंगे कई संग्रहालयों में देखने को मिलेंगे। ओढ़नी के रूप में इसका उपयोग विवाहित स्त्रियाँ ही करती हैं। बंधेज की रंगाई लगभग सम्पूर्ण राजस्थान में होती है परन्तु अजमेर, जोधपुर और जयपुर के चुनरी-लहरिया प्रसिद्ध हैं।

चुनरी मोटे और महीन दोनों प्रकार के काम की बनती है। मोटे काम तथा हलकी भांत वाली चुनरियों का उपयोग रोजमर्रा के वस्त्रों के रूप में होता है, जब कि महीन बूंद वाली और घनी भांतों वाली साड़ी एवं ओढ़नियों का उपयोग विशेष रूप से मांगलिक प्रसंगों पर होता है। ओढ़नी डेढ़पाट की होती है जिनमें गहरे लाल रंग की जमीन में हरी, पीली और सफेद महीन बूंददार भांतें उभारी जाती हैं। इनमें बनाई जाने वाली भांतों में प्रमुख हाथी भांत, घोड़ा भांत, सखी भांत, मोरडी भांत, मोतीचूर भांत, चौपड भांत, छाबड़ी भांत, सूआवेल भांत, बीजवेल भांत आदि हैं[३]। उच्चवर्ग में प्रचलित कीमती ओढनियों में गोटे का किनारा, कलाबत्तू के फूल तथा मोती आदि टांकने की प्रथा है। पहले सम्भवतः कीमती पत्थर भी इनमें टांके जाते थे[४]।

राजस्थान में चूनरी से सम्बन्धित अनेक मान्यताएं जुड़ी हुई हैं। ये भाई बहनों के पवित्र स्नेह की प्रतीक होने के साथ-साथ सौभाग्यवती और पतिव्रता स्त्रियों की पवित्रता की भी प्रतीक मानी जाती है। मांगलिक प्रसगों पर पहनी जाने वाली चुनरी की रंगाई के लिए मंगलवार शुभ दिन माना जाता है[५]।

बंधेज पद्धति से रंगी ओढ़नी का एक प्रकार 'पोमचा' है। राजस्थान के पोमचाओं में प्रायः डेढ़पाट की पीली जमीन में चारों ओर लाल हाशिया रहता है। बीचो-बीच लाल रंग से बड़ा वृत्त तथा कोनों में चौथाई वृत्त रहते हैं। लाल हिस्सों में पीले और सफेद से बूंददार भांते रहती हैं। शेष जमोन प्रायः सादी रहती है और हाशिये में बेल बनायी जाती है।

जयपुर की चुनरी सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय है। उत्तर प्रदेश एवं बिहार के पुराने लाकगीतों में 'जैंपुर चुनरिया' का उल्लेख कई स्थलों पर हुआ है।[६] जयपुर में जालूपुरा बंधेज रंगाई का प्रमुख केन्द्र है। यह मुसलमानों

१—स्त्रीओनो पहेरवेश, पृ० ४४

२—वही

३—बंधेज में बनने वाली भांतों से उक्त नामों की जानकारी के लिए मैं जयपुर के नीलगर तथा बांधणहारियों की आभारी हूँ।

४—राजस्थान के परम्परागत विवाहगीतों में चुनरी में हीरा टांकने का उल्लेख हुआ है :

'आयो छै माको जायो वीर, हीरां जड़ लायो चूनड़ी।
ओढ़ूं तो हीरां रे वीरा झड़ पड़े, मेलू तो तरसे बाई रो जीव।
उठाई घणा देवा चूनड़ी ॥'

५—यह अनेक लकगीतों से ध्वनित है जैसे : सतीमाता तेरी चुनरी राणो रंगी छे मंगलवाराजी'

६—बिहार में मुंडन संस्कार के अवसर पर गाये जाने वाले एक गीत में 'जैपुर चुनरिया' का उल्लेख देखिए

"पहिर कवन बहिनी जैंपुर चुनरिया, ले लेह हो बहिनी भैया के आर।
आपन मुखे बहिनी भैया असिसिहा, भैया के होखो बड़ राज।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का मुहल्ला है, जहां घर-घर में स्त्रियाँ कपड़े बांधती हुई दिखाई देंगी। इनको नीलगरों (रंगरेजों) द्वारा गेरू से छपे हुए कपड़े मिलते हैं। महीन भांतों को बांधने का काम ये 'नूल्यों' (मिजराब के समान लोहे का नुकीला छल्ला) की सहायता से करती हैं। इसे ये बांये हाथ की चौथी उंगली में पहनती हैं। परिश्रम के अनुसार इन्हें एक साड़ी को बाँधने में १ से १० दिन तक लग जाते हैं। एक साड़ी की बंधाई परिश्रम के अनुपात में १ से ३ रुपये तक दी जाती है।

लहरिया

लहरिया भी बँधेज या बांधनू का एक प्रकार है। विविध रंगों में रंगे जाने के कारण इसके विभिन्न नाम पड़ गये हैं, जैसे दुरंगी लहरिया, तिरंगी लहरिया, पंचरंगी लहरिया, सतरंगी लहरिया इत्यादि। 'समुद्रलहर[1]' या 'इन्द्रधनुषी'[2] भी लहरिया के ही प्रकार हैं। गुजराती वर्णकों में 'प्रतापशाहो लहरिया' का उल्लेख मिलता है[3]। लहरिया रंगने के लिए जितने रंग की लहर डालना हो उतने रंग घोल कर रख लिए जाते हैं। कपड़े को तिरछा, सीधा या तह करके और उमेठ कर धांगों से थोड़ी थोड़ी दूर पर बांध दिया जाता है और रंगाई प्रारम्भ करते हैं। एक रंग में रंगने के पश्चात् सुखाकर धागे खोल दिए जाते हैं। अब दूसरी बार जिस रंग में रंगना हो उतने हिस्से को छोड़ शेष भाग धागे से बांधकर ढँक दिए जाते हैं। इस प्रकार धागे खोलकर एवं बांधकर क्रमशः ३, ५ या ७ बार मनपसंद रंगों में रंग लिया जाता है।

१—पद्मावत में 'समुद्रलहर' नामक कपड़े का उल्लेख है (डा० अग्रवाल, पृ० १३२) जो सम्भवतः लहरिया का ही एक प्रकार है।

२—'समुद्र लहर' को ही सम्भवतः लोकगीतों में 'धनसपुरी' कहा गया है एक राजस्थानी लोकगीत में देखिए—
"बना हसती थे ल्याजो जी एक ल्यानो धनसपुरी, बनी भांत बतावो हे किसीक ल्यावां धनसपुरी,
बना हर्‌या-हर्‌या पल्लां जी क लहर्‌या भात धनसपुरी" राजस्थानी लोकगीत, संपादिका-पूर्णिमा गहलोत
जयपुर १९७१, पृ० ४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छपे और चित्रित कपड़े

रंगाई के समान ही भारत में छपाई कला का इतिहास भी प्राचीन है। मध्य युग में सम्पूर्ण एशिया और अफ्रीका के देशों में छाये हुए भारतीय छपे वस्त्र बाद में 'छींट', 'प्रिंटेट केलिको' तथा 'पिंथाडोज़' के नाम से यूरोप में लोकप्रिय हुए।

विद्वानों के मतानुसार ठप्पों से वस्त्र छापने की पद्धति का जन्म चीन में हुआ। चीन से इसकी जानकारी मध्य एशिया होते हुए ईरान पहुँची और वहां से मुसलमानों के साथ भारत आयी[1]। भारत के अधिकतम छीपा मुसलमान हैं, इस आधार पर भी कुछ विद्वान इस कला को ईरान से आयी मानते हैं।

फिस्टर के मतानुसार ११वीं शती तक ईरानवासी रेशमी कपड़े छापना जान गये थे परन्तु सूती नहीं छाप सकते थे, जोकि अपेक्षाकृत अधिक कठिन है[2]। चार्डिन (१६६६) अपने यात्रा विवरण में ईरानियों के बारे में लिखता है कि 'वे लोग सूती कपड़ा छापते हैं परन्तु भारत के जितना अच्छा नहीं[3]।' इन उल्लेखों के आधार पर यह मत सही प्रतीत नहीं होता कि भारत को छपाई कला की जानकारी ईरान से मिली।

मुसलमान कला के विद्वान भी भारत को ही छपाई कला का मूलस्थान स्वीकार करते हैं। एम० एस० डिमान्ड इस सम्बन्ध में लिखते हैं—"Two methods of decorating fabrics are of ancient Indian origin. These are block prinnting and resist dyeing, which in the Mughal period were brought to a high degree of perfection and combind with painting"[4]

अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि मुसलमानों के पूर्व भारत में छपाई उद्योग सुविकसित अवस्था में था। भारत की विषम जलवायु के कारण यद्यपि लकड़ी के प्राचीन ठप्पों के अवशेष तो नहीं मिले परन्तु एक पत्थर का ठप्पा मिला है, जो ५वीं शती का बतलाया जाता है[5]।

'ठप्पा' संस्कृत शब्द 'स्थाप्यक' से बना है[6]। बाण ने इसके लिए 'रूप' शब्द का प्रयोग किया है[7]। बाण द्वारा उल्लिखित 'कुटिलक्रमरूपक्रियमाणपल्लवपरभाग' पद से सुविकसित छपाई कला का संकेत मिलता है[8]।

१—स्मिथ, एo डीo हावेल, 'दि डाइड एण्ड प्रिंटेड कॉटन्स ऑफ इंडिया', इंडियन आर्ट एंड लेटर्स (न्यू सीरीज), भाग १४, सं० २, १९४०, पृ० ९२

२—फिस्टर, आर०, 'दि इंडियन आर्ट ऑफ केलिको प्रिंटिंग इन दि मिडल एजेज', इंडियन आर्ट एंड लेटर्स, भाग १३, सं० १, पृ० २६

३—फिस्टर, वही, पृ० २५

४—डिमान्ड, एम. एस., ए हैंडबुक ऑफ मुहम्मेडन आर्ट, १९४७, पृ० २७७

५—जयकर, पुपुल, कॉटन प्रिंट्स ऑफ गुजरात एण्ड काठियावाड़, मार्ग, भाग ४, सं०४, १९५१, पृ० ४२

६—मित्तल, जगदीश और मित्तल कमला, 'भारतीय कसीदा' में डॉ० वा० श० अग्रवाल लिखित भूमिका. पृ० ५

७—अग्रवाल, वा० श०, हर्ष चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७५

८—वही, डॉ० अग्रवाल के अनुसार बाण द्वारा वर्णित छपे वस्त्रों की भांतों की झलक सारनाथ के धमेख स्तूप के शिलाघटित आवरण के अलंकरण में देखी जा सकती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन संस्कृत साहित्य में उल्लिखित 'फुट्टक'[1], 'पुष्प-पट'[2], 'हंसलक्षणयुक्त दुकूल'[3] तथा 'गोरोचनालिखित हंस-मिथुन' (कादम्बरी) से छपे और चित्रित वस्त्रों का आभास मिलता है। अजंता के चित्रों[4], जैन-लघुचित्रों[5], तथा फोस्तात से प्राप्त छपे कपड़ों[6] से प्रमाणित है कि हंस का अलंकरण छपाई की भांतों में लोकप्रिय था।

पश्चिमी चालुक्य शासक सोमेश्वर (११२४-११३८) ने 'मानसोल्लास' में सूती, रेशमी, क्षौम और ऊनी कपड़ों पर विविध रंगों से बनाये जाने वाले गोल, चौकोर, बूंद और लहरदार अलंकरणों का विस्तार से वर्णन किया है[7], जो पश्चिम भारत के जैन लघुचित्रों में बनाये भांतदार वस्त्रों से समानता रखता है। सोमेश्वर द्वारा उल्लिखित 'चित्र कपर्डक' और 'चित्रपटी पट' आदि छपे या कलमकारी के कपड़े प्रतीत होते हैं।

मध्ययुग के शब्दकोशों में उल्लिखित 'उच्छो' (छपाई उद्योग)[8] और 'छिम्पाय'[9] (छीपा) शब्दों से ध्वनित है कि इस युग में यह उद्योग सुविकसित अवस्था में पहुँच चुका था तथा छीपाओं की श्रेणियाँ और बड़े-बड़े समूह विकसित हो चुके थे[10]।

अनेक प्रकार की अनुकूल सुविधायें उपलब्ध होने के कारण मध्य युग में बहुत बड़े पैमाने पर भारत में छपाई का काम होता था। ये कपड़े अच्छे और सस्ते होते थे अतः प्रत्येक देश में इसकी खपत बढ़ गयी थी। इसके अतिरिक्त भारतीय कारीगरों में दूसरे देशों की कला और संस्कृति को सुरुचिपूर्ण ढंग से अपना लेने की अद्भुत क्षमता रही है, जिसके परिणामस्वरूप जिस देश को कपड़े निर्यात किये जाते थे वहां के देशवासियों की पसंद और आवश्यकता के अनुकूल कपड़े छापे जाते थे[11]।

मध्य युग में गुजरात छपाई उद्योग का प्रमुख केन्द्र था जहां से बड़ी मात्रा में छपे कपड़े एशिया और अफ्रिका के देशों को निर्यात किये जाते थे। १२वीं शती में चीन के विदेश व्यापार अधिकारी चाऊ-जु-कुआ ने अपने यात्रा विवरण में मलाबार के सूती कपड़ों और गुजरात के रंग-बिरंगे कपड़ों का उल्लेख किया है[12]। उसके अनुसार सिंध में फूलदार सूती कपड़े या हरे रंग की छींट बनती थी[13]। चेंग हो के यात्रा विवरणों से भी ज्ञात होता है कि दक्षिण एशिया के तटीय

१—दिव्यावदान पृ० २९, डॉ० मोतीचन्द्र, प्रा० भा० वे० भू०, पृ० ९९

२—ललित विस्तर, पृ० १४१

३—कुमारसंभव, वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री द्वारा संपादित, पृ० ९१, हर्षचरित, पृ० १९८ तथा अतगडदसाओ, पृ० ४६, डा मोतीचन्द्र, प्रा० भा० वे० भू०, पृ० १५९

४—यजदानी, अजंता १, प्लेट १८

५—डॉ० मोतीचन्द्र, जैन मिनिएचर पेंटिंग फ्रॉम वेस्टर्न इंडिया, आकृति, ८५, ८७, ८८

६—इर्विन, जॉन तथा हाल, मार्गरेट, इंडियन पेंटेड एण्ड प्रिंटेड फेब्रिक्स, भाग १, १९७१, प्लेट २

७—सोमेश्वर विरचित 'अभिलषितार्थ चिंतामणि', गोडकर द्वारा संपादित, बड़ौदा १९३९, भाग २, पृ० ८९

८—धनपाल रचित पाइलच्छी नाममाला, २३६, डॉ० मोतीचन्द्र, ज० इ० टे० हि०, भाग ५, पृ० २३

९—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ४३, पृ० १९३

१०—गोपाल, डॉ० लल्लनजी, दि इकनोमिक लाइफ ऑफ नॉदर्न इंडिया, अध्याय ४

११—उदाहरणस्वरूप मुसलमान देशों को निर्यात किए जाने वाले कपड़ों पर फारसी में कुरान आदि से उद्धरण छापे जाते थे, जैसा कि फोस्तात के कपड़ों में देखा जा सकता है। फिस्टर, वहीं, चित्र ४ सी, और ४ डी

१२—चाऊ-जु-कुआ द्वारा १२वीं और १३वीं शती में अरब और चीन के व्यापार पर लिखा ग्रन्थ 'चुफान-ची, अनुवादक एफ० हर्थ तथा डब्लू० डब्लू० राकहिल, सेंट पीटर्सबर्ग, १९१२, पृ० ९२, तथा डॉ० मोतीचन्द्र, जैन मिनिएचर पेंटिंग्स फ्रॉम वेस्टर्न इंडिया, पृ० ११५

१३—डॉ० मोतीचन्द्र, जैन० वही, पृ० ११५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेत्रों तथा दक्षिण एशिया के द्वीपों को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में छपे सूती कपड़े प्रमुख थे[१]।

फोस्तात से बड़ी मात्रा में भारतीय छपे कपड़े प्राप्त हुए हैं, जो मध्ययुग में अफ्रीकी देशों में उनकी लोकप्रियता को प्रमाणित करते हैं। ये कपड़े इन देशों की आम जनता के दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके थे।

फोस्तात से प्राप्त अधिकतर छपे कपड़े गुजरात-उत्पत्ति प्रगट करते हैं। इनमें प्राय: लाल (मंजिष्ठ) या नीले रंग के मोटे सूती कपड़े की ज़मीन में 'रेजिस्ट' पद्धति से सफेद अलंकरण बना है। इनकी भांतें समकालीन गुजराती वास्तु कला से समानता रखती हैं[२]। कुछ कपड़ों में एक चश्म मनुष्य आकृवियों की परली आँख भी दिखलाई गयी है[३] जो १२वीं से १७वीं शती तक के गुजराती जैन चित्रों की प्रमुख विशेषता है। कुछ कपड़ों की भांतों में पेड़ पौधों तथा हाथी, हंस, तोता आदि पशु-पक्षियों का संयोजन है[४] और कुछ में मोती की लड़ियाँ बनी हैं[५]। इस प्रकार के अलंकरण की मध्ययुगीन भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला में बहुलता रही है। कुछ में अरबी लेख हैं। मुसलमान देशों को निर्यात किये जाने वाले कपड़ों में इस प्रकार के लेख विशेषरूप से लिखे जाते थे। इनका प्रयोग इन देशों में चंदोवा और कब्रों को ढकने के लिए किया जाता था[६]। कुछ भांतों में १६वीं शती की ईरानी चित्रकला और कुछ में १७वीं शती में इटली में बनने वाले रेशमी कपड़ों की भांतों का प्रभाव दिखाई देता है[७]।

१६वीं शती में डॉर्टे बार्बोसा लिखता है कि खंभात से सूती सफेद तथा छपे कपड़े समुद्री मार्ग से अरब, ईरान, और भारत के अन्य भागों को तथा मल्लका, सुमात्रा, मेलिंडी, मेगाडोक्सो एवं मोम्बासा को निर्यात किए जाते थे। पेगू, श्याम, तिमोरबांदा, सीलेबीज और चीन को भी खंभात और पूलीकट से छपे कपड़े निर्यात किए जाते थे[८]। १६वीं शती तक भारतीय कपड़ों का व्यापार पूर्णत: ईरानी और अरबी मुसलमान व्यापारियों के हाथ में था।

१७वीं शती में आते-आते पुर्तगाली, डच और फ्रेंच व्यापारियों के लिए भी भारतीय छपे कपड़े आकर्षण का मुख्य केन्द्र बन गये। मोटे और गफ सूती छपे कपड़े यूरोपीय देशों की जलवायु और रहन-सहन के लिए महीन मलमल और रेशमी कपड़ों की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध हुए।

ईस्ट इण्डिया कंपनी के विवरणों से ज्ञात है कि बुरहानपुर के छपे और कलमकारी (पिंथाडोज़) के कपड़े पश्चिमी देशों में रजाई और पर्दे इत्यादि के लिए बड़ी मात्रा में निर्यात किए जाते थे। कंपनी को प्रतिवर्ष इनसे बड़ी आमदनी होती थी[९]। द० पू० एशिया के देशों में भी भारतीय छपे और कलमकारी के कपड़ों की पर्याप्त खपत थी[१०]। २५ नवम्बर १६१४ को जापान से लिखे एक पत्र में वहां विभिन्न प्रकार के भारतीय पिंथाडोज की बिक्री का उल्लेख है[११]। अनेक स्थलों पर व्यापारिक विवरणों में

१—फिस्टर, आर०, दि इंडियन आर्ट आँफ केलिको प्रिंटिंग इन दि मिडिल एजेज, इंडियन आर्ट एण्ड लेटर्स, भाग १३, सं० १, पृ० २३

२—देखिए, फिस्टर, वही, चित्र १ ए तथा चित्र ४ बी

३—फिस्टर, वही, पृ० ३०

४—वही, चित्र, ४

५—वही, चित्र २ सी०

६—इर्विन, जॉन, केलिको म्युजियम का केटलॉग, भाग १, पृ० ४

७—वही ८—मंसेल, लॉंगवर्थ डेम्स, दि बुक आँफ डॉर्टे बार्बोसा, देखिए डॉ० मोतीचन्द्र, जैन मिनिएचर पेंटिंग, पृ० ११७

९—लेटर्स रिसीवड बाइ ईस्ट इंडिया कंपनी फ्रॉम इट्स सर्वेंट्स इन दि ईस्ट, भाग १, पृ०२९; भाग २, पृ०१३६

१०—वही, भाग १, पृ०७५,७६; भाग २, पृ०१६६,३३७; भाग ४, पृ० २४०

११—वही, भाग २, पृ० १९८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहमदाबाद की छींट[१], सूरत[२] और बुरहानपुर के 'पिथाडोज[३] आदि के उल्लेख १७वीं शती में उन्नत छपाई उद्योग और विदेशों में लोकप्रियता प्रमाणित करते हैं।

मुगल काल में अन्य कलाओं के समान छपाई कला को भी विकास के लिए एक नयी दिशा मिली। शाही कारखानों तथा अन्य राजकीय संरक्षण प्राप्त केन्द्रों में मुगल दरबार की रुचि के अनुकूल पच्चीकारी के समान महीन और ईरानी ढंग के अलंकरण का प्रयोग होने लगा। सांगानेर, मसुलीपट्टम्, बुरहानपुर, अहमदाबाद, फर्रुखाबाद तथा पंजाब के अनेक छपाई केन्द्रों में इस ढंग के अलंकरण का विकास हुआ। दूसरी ओर जो स्थान दरबारी प्रभाव से मुक्त थे वहां तथा गांवों आदि में परम्परागत ढंग से छपाई होती रही। आज भी अनेक गांवों में 'रेजिस्ट' पद्धति से छपाई होती है जिसमें भारतीय छपाई का प्राचीन या मूल रूप देखा जा सकता है। वास्तव से रिजिस्ट पद्धति से छपाई का ढंग पुराना है जो मुसलमानों के आने के शताब्दियों पूर्व ही यहा विकसित हो चुका था[४]।

मुगल काल में आगरा और सिरोज छपाई के दो महत्वपूर्ण केन्द्र थे[५]। उत्तर भारत में अन्य कई केन्द्र भी विकसित अवस्था में थे परन्तु फिर भी मुगल दरबार में मसुलीपट्टम के चित्रित कपड़े पसंद किए जाते थे। बर्नियर ने मुगल बादशाहों द्वारा प्रयुक्त मसुलीपट्टम के चित्रित सुन्दर शामियानों की प्रशंसा की है। छपे हुए 'फिरंगी पर्दे' भी दरबार-आम की सजावट और मुगल शान-शौकत के अनुकूल समझे जाते थे[६]।

गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा पंजाब में अनेक स्थानों पर न्यूनाधिक मात्रा में छपाई काम होता आरहा है। यहाँ केवल प्रमुख केन्द्रों की चर्चा की जा रही हैं।

गुजरात और काठियावाड़

इन दोनों स्थानों में हिन्दू और मुसलमान समान रूप छपाई का काम करते आ रहे हैं तथा दोनों ही अपने आपको खत्री कहते हैं। बम्बई के खत्री रंगरेज और छीपा गुजराती बोलते हैं तथा अपने को मूल रूप से सिन्ध से आया मानते हैं[७]।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर श्री गुप्ते का मत है कि गुजरात और काठियावाड़ के छीपाओं के पूर्वज मूल रूप से सिन्ध के निवासी थे और यहीं से पश्चिम भारत तथा उत्तर भारत के विभिन्न छपाई केन्द्रों में जाकर बसे[८]। पिंगलपुराण तथा भाटों के विवरण के अनुसार सिन्ध और खोरासान के शासक जयचन्द्र पिंगल के शासन काल में खत्री सर्वाधिक उन्नतिशील और शक्तिशाली थे। राज्य में सभी ऊँचे पदों पर खत्री नियुक्त थे तथा सेना के उच्च पदाधिकारी भी खत्री थे। कुछ धार्मिक मतभेद के कारण राजा और खत्रियों के बीच युद्ध हुआ। अन्त में पराजय के भय से अधिकतर खत्री अन्य स्थानों में जाकर बस गये[९]। श्रीगुप्ते ने सिंध से भागने वाले इन खत्रियों की दो बस्तियों की चर्चा की है, एक लोवारगढ़ और दूसरी हिंगलाज। लोवारगढ़ के निवासी बाद में लोहाणा जाति में परिवर्तित

१— लेटर्स रिसींवड, भा० ३, पृ० ३२; भाग ६, पृ० २५; भाग ६, पृ० २५७
२—वही, भाग ४, पृ० २६८
३—वही, पृ० ३२, भाग १, पृ० २६; भाग ५, पृ० ५५; भाग ६, पृ० २५७
४—भारत में प्राचीन काल से प्रयुक्त यह 'रेजिस्ट' पद्धति ही आधुनिक 'बाटिक' कला की जन्मदात्री है।
५ —इर्विन, जाँन तथा हाॅल मार्गरेट, इंडियन पेटेंड एण्ड प्रिंटेट फेब्रिकस (केलिको म्युजियम का केटलाॅग), भाग १, पृ० २५
६—जहाँगीरनामा, ब्रजरत्नदास द्वारा अनुवादित, पृ० ३६३
७—गुप्ते, बी०ए०, दि बरौडा कोर्ट, जर्नल आॅफ इंडियन आर्ट, भाग १, सं० १६, पृ० १२६; थाना के क्रिश्चियन बुनकर जो रंगरेज भी हैं, खत्री कहलाते हैं। ये लोग पुर्तगालियों द्वारा क्रिश्चियन बना लिए गए थे। कोटा राज्य में स्थित बरार में भी छपाई का काम खत्री करते आ रहे हैं। १९वीं शती के अन्त में यहाँ इनके १०८ परिवार छपाई का काम करते थे। देखिए टी० एन० मुखर्जी, आर्ट मैन्युफेक्चर्स आॅफ इण्डिया, पृ० ३५५
८—गुप्ते, वही, पृ० १२६
९—वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो गये। हिंगलाज में जा बसे खत्रियों ने रंगाई और छपाई उद्योग अपना लिया तथा गुजरात और राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बस गये[१]।

श्री गुप्ते के मतानुसार खत्रियों द्वारा सिन्ध से भाग कर अन्य स्थानों में जाकर बसने की घटना १६वीं शती के मध्य में घटी होगी जब कि सिन्ध के कुलहोरा और दाऊदपुत्र परिवारों के बीच लम्बे समय तक चलने वाले मतभेद के कारण उत्पन्न अशांत वातावरण से ऊब कर ये लोग अन्य स्थानों में जाकर बस गए। यदि इस बात को सही मान लें कि १६वीं शती में सिन्ध से आये खत्री रंगरेज और छीपा, गुजरात तथा उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों में जाकर बसे, तो भी यह नहीं कह सकते कि उनके आने के पूर्व यहाँ रंगाई और छपाई उद्योग विकसित नहीं था। ऊपर हम देख चुके हैं कि गुजरात में रंगाई और छपाई का काम बहुत पहले से होता आ रहा है।

गुजरात और काठियावाड़ में अहमदाबाद, खेड़ा, सूरत, बड़ोदा, भडुच, मलेगाम, कच्छ, भावनगर, जामनगर और सुरेन्द्रनगर आदि छपाई के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। इन सभी स्थानों में 'रेजिस्ट' छपाई तथा ठप्पों से छपाई का काम एक साथ होता है।

फ्रेंच व्यापारी जार्जरॉक्स (जो पश्चिम भारत में १६७६ से १६६१ तक रहा) ने अहमदाबाद के छपाई उद्योग का विस्तार से वर्णन किया है।[२] उसने कुटीर उद्योग के रूप में इसका उल्लेख किया है। साथ ही उसने छीपाओं की सादगी और गरीबी का भी सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। यहाँ के छीपा मोटी भांत वाले ठप्पों से छपाई करते थे जबकि यूरोपीय बाजार को जाने वाली छींट महीन होती थी। जार्ज रॉक्स ने यहाँ के छपाई के तरीके का जो वर्णन किया है वह २०वीं शती तक चले आ रहे तरीके से मेल खाता है। उसके अनुसार पहले रेखायें छाप ली जाती थीं। जमीन का रंग प्रायः लाल या बैंगनी रहता था जिसमें हरे, पीले आदि रंगों से भांतें बनी रहती थीं।

श्रीमती पुपुल जयकर ने गुजरात और काठियावाड़ के तरीके का वर्णन किया है[३] जो संक्षेप में निम्नलिखित है :–

"भैंस के दूध में हर्रें का चूर्ण मिलाकर कपड़े को डुबो कर धूप में सुखा दिया जाता था। दूसरे दिन सादा पानी में धो दिया जाता और सुखने पर तह करके इमली की लकड़ी के बने हथौड़े से पिटाई की जाती थी। इसके पश्चात् कपड़े को पुनः चूने के पानी, हर्रें के चूर्ण और भैंस के दूध के घोल में डाला जाता था, जिससे कपड़े पर हल्का जैतूनी रंग चढ़ जाता था। अब जो डिजाइन बनानी हो उसकी रेख कपड़े पर 'ट्रेस' कर ली जाती थी और जिन हिस्सों को लाल रखना हो उन पर लाल पेंसिल से निशान लगाकर कपड़े को बकरी या भेड़ के गोबर घुले पानी में उबाला जाता था। सूखने पर पुनः पीटा जाता था। अब कपड़े को नीलगर के पास भेज दिया जाता था। वह जिन हिस्सों को नीला या हरा रंगना हो उनको छोड़ शेष भागों में 'रेजिस्ट पेस्ट' लगा देता था और तब कपड़े पर नीला, लाल या बैंगनी रंग चढ़ा दिया जाता था। यह रंग ब्रश से या कपड़े के फोहे से चढ़ाया जाता था। इसके बाद कपड़े को उबाल कर 'रेजिस्ट पेस्ट' निकाल दिया जाता था। इस प्रकार जिन हिस्सों में 'रेजिस्ट पेस्ट' लगाया जाता वह सफेद निकल जाता। इसके बाद कपड़े को पुनः पीटा जाता था।"

अहमदाबाद में चूना और गोंद के बने 'रेजिस्ट पेस्ट' का प्रयोग होता था। सिंध में सज्जीखार और गोंद तथा सुरत में आरंडी के तेल और मोम इत्यादि के संयोग से 'रेजिस्ट पेस्ट' तैयार की जाती थी[४]।

१—गुप्ते, वही, पृ० १२६

२ - इर्विन, जॉन और हॉल मार्गरेट, हिस्टोरिक टेक्स्टाइलस ऑफ इण्डिया एट केलिको म्युजियम, भाग १, पृ० १२४

३—जयकर, पुपुल, कॉटन प्रिन्ट्स फ्रॉम गुजरात एण्ड काठियावाड़, मार्ग, भाग ४, सं० ४, पृ० ४० तथा दि इण्डियन प्रिंटेड फेब्रिक्स, पृ० १२

४—वॉट, सर जॉर्ज, इण्डियन आर्ट एट देहली, पृ० २५१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१६ वीं शती खेड़ा शहर छपाई का बहुत बड़ा केन्द्र था, जहां लगभग ४०० हिन्दू और १५० मुसलमान परिवार छपाई के काम में लगे हुए थे[१]। १६ वीं शती के लेखकों के अनुसार यहां की छपाई अहमदाबाद या भड़ुच की अपेक्षा अधिक महीन साफ और उच्चकोटि की होती थी[२]। यहां साड़ी, ओढ़नी और जाजिम आदि छापे जाते थे। साड़ियों की छपाई महीन अंग्रेजी कपड़े पर की जाती थी, जब कि जाजिम मोटे कपड़े भर छापी जाती थी जिनकी खपत यूरोप में फर्श पर बिछाने के लिए होती थी। खेड़ा में जमीन प्रायः गहरे नीले या गहरे हरे रंग की होती थी जिसमें महीन बूंददार भांतें उभारी जाती थीं। साड़ियों के आंचल में प्रायः पीले, हरे और लाल की धारियां बनायी जाती थी। जमीन में उन्हीं रंगों से बूटियां रहती थीं।

वड़ौदा भी छपाई का बहुत बड़ा केन्द्र था[३]। यहाँ छपाई खेड़ा के समान ही होती थी[४]। बड़ौदा की छपी साड़ी का एक सुन्दर नमूना जर्नल आँफ इण्डियन आर्ट (भाग १, १६८६) में दिया है।

अहमदाबाद में कुछ खास खनिज पदार्थों युक्त कुओं के आसपास छीपाओं और रंगरेजों की अनेक बस्तियाँ थीं[५]। मीराते अहमदी के लेखक ने यहाँ सुविकसित छपाई और रंगाई उद्योग का उल्लेख किया है।[६] यहाँ साड़ी, ओढ़नी, छींट के थान, पर्दे आदि की छपाई मुख्यरूप से होती थी।

१६वीं शताब्दी के अन्त में अहमदाबाद की जेल में कैदियों से छपाई का काम करवाया जाता था[७]। वह मोटे भांत वाली निम्नस्तर की छपाई होती थी। ये कपड़े कम लागत में तैयार होने के कारण सस्ते बेचे जाते थे। इस तरह की छपाई के कुछ नमूने इंगलैण्ड के विक्टोरिया और एलबर्ट संग्रहालय में हैं।

कच्छ में महीन भांतों की छपाई 'रेजिस्ट' पद्धति से और ठप्पे छाप कर की जाती थी। इनमें जमीन का रंग गहरा लाल या गहरा नीला होता था जिसमें सफेद रेखाओं से भांत उभारी जाती थी। कच्छ की छपाई का सुन्दर नमूना केलिको संग्रहालय में है (जिसकी सं० १४४१ है)। यह लुंगी है जिसमें गहरे लाल और नीले रंग की जमीन में सफेद रेखायुक्त नीले गोल फूलों का घना भराव है। आंचल में बदामी आकार में तथा मेहराव में महीन फूल पत्तियों का अलंकरण हैं[८]।

उपर्युक्त प्रकार की छपाई पहले सिन्ध में होती थी परन्तु बँटवारे के बाद से कच्छ में होने लगी[९]। आजकल खादी के कपड़ों में इस प्रकार की छपी भांत और रंग योजना की साड़ी और पर्दे आदि कच्छ में बड़ी मात्रा में छापे जा रहे हैं। भुज के खत्री मुसलमानों के छपे कपड़े खादी भण्डार और हस्त-करघा वस्त्र-भण्डारों में देखे जा सकते हैं।

वॉट के अनुसार सिन्ध में छपाई का काम गुजरात की अपेक्षा अधिक उच्चस्तर पर होता था।[१०] यहाँ लाहौर के समान ही बुझते रंगों का प्रयोग होता था विशेष रूप से निबुआ, हरा, ईंट के समान लाल या नारंगी रंग का प्रयोग होता था।

१—मुखर्जी, टी०एन०, आर्टमैनुफैक्चर्स आँफ इण्डिया, पृ० ३५६

२—मुखर्जी खेड़ा के सम्बन्ध में उद्धृत करते हुए लिखते हैं— 'दि प्रिंटिंग इज़ रिमार्केबुली वेल डन, क्लियर एण्ड नॉट ब्लर्ड, एण्ड इज सुपीरियर टु दैट आँफ आइदर अहमदाबाद ऑर भडोच।' वही, पृ० ३५६

३—वॉट, पृ० २५१

४—वही

५—गुजरातनुं पाटनगर : अमदाबाद, पृ० ५०५

६—वही

७—ईर्विन, हिस्टोरिक टेक्स्टाइल्स एट केलिको म्युजियम, भाग १, पृ० १२४

८—वही, प्लेट ७६ ए

६—वही, पृ० १३१

१०—वॉट पृ० २५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोकगीतों में उल्लिखित मुलतानी छींटें भी सम्भवत: उक्त प्रकार की छींटों के समान होती थीं। राजस्थानी लोकगीतों में मुलतानी छींटों की प्रसंसा करते हुए उन्हें अन्य सभी स्थानों की छींटों से श्रेष्ठ बताया गया है[१]।

सम्पूर्ण गुजरात में ठप्पे बनाने का मुख्य केन्द्र अहमदाबाद था[२]। आज भी अहमदाबाद के समीप पेठापुर में ठप्पे बनते हैं। महीन फूलपत्तियों की बूटी, घोड़ा, हाथी, तोता, मोर और पुतलियों का अलंकरण गुजरात की भांतों की प्रमुख विशेषता है। बूटियों में महीन बूंदें या चारखाने बने रहते हैं। इसके अतिरिक्त महीन फूल-पत्तियों के जाल और बादरूम भी छापे जाते थे।

गुजरात की छपी साड़ी (छायल)[३] और दुपट्टों के सुन्दर नमूने केलिको संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इनमें जमीन प्राय: गहरे लाल या नीले रंग के मलमल की हैं। आंचल महीन और मोटी अनेक अलंकृत पट्टियों को छापकर बनाया है, जो पीले और हरे रंग की हैं। महीन पट्टियों के बीच-बीच में चौड़ी पट्टियाँ हैं। इनमें फूल-पत्तियों की बेल बनी हैं। इसके बाद आंचल के छोर पर बूटों की पंक्ति है। बूटों में ६ या ७ फूल और पत्तियों से युक्त पौधे को केरी के आकार में बनाया गया है। फूल सफेद है जो 'रेजिस्ट' द्वारा उभरे हैं। पत्तियां हरी व पीली हैं। किनारे और आंचल के ऊपर बूंददार कंगूरे की झालर है। जमीन में कभी कभी आंचल के समान बूटे बना दिए जाते थे और कभी महीन बूटियों का भराव रहता था[४]।

अहमदाबाद की छपी हुई भारत कला भवन में १९ वीं शती की एक साड़ी है। जमीन का कपड़ा झिरझिरे मलमल का है जिस पर 'रेजिस्ट' छपाई द्वारा बूटे और आंचल छाप कर गहरे लाल रंग की जमीन रंगी हुई है। आंचल में पीले और हरे अलंकरण से युक्त कई पट्टियां हैं तथा छोर पर गहरे नीले या सुरमई रंग की जमीन में बूटों की पंक्ति हैं। इसी प्रकार के बूटे सम्पूर्ण जमीन में छपे हुए हैं। इनकी रेखा काली, फूल सफेद तथा पत्तियां और डण्ठल पीले और हरे हैं। किनारे में पतली पट्टी और बूंददार कंगूरा छपे हैं। गुजरात की कुछ छींटे भी भारत कला भवन में है।

१—अ—" जलामारू, छींटां मायली छींट भली मुलतानी ओ"
ब—जला रे आंमलिया पकी नैं अब रूत आई रे,
जलाँ रे छींटा मायली छींट भली मुलतानी रे।
म्हारी जोड़ी रा जलाँ, चीता लंकी रा जला,
छींटा मांयली छींट भली मुलतनी रे।"
राजस्थानी लोकगीत (पूर्णिमा गहलोत द्वारा संपादित), जयपुर १९७१, पृ० ४९ तथा १३८

२—जयकर, पुपुल, मार्ग ४, सं० ४,

३—१७-१९ वीं शती तक के गुजराती काव्यों में 'छायल' का उल्लेख बहुतायत से मिलता है। जैसे—
(अ) 'सादी साड़ियों लखो त्रण सों, छायल लखो से चार।'
(व) 'छबीली बहुने छायल भारे, भात्य ते राती धोली जी।'
कवि परमामन्द कृत 'कुंवर बाई नुं मामेरू, वृहत काव्य दोहन (संग्रहकर्ता-इच्छाराम सूर्यराम देसाई), बम्बई १९२५, भाग १; गुजराती गरवा और लोक-गीतों में भी छायल का उल्लेख उनकी लोकप्रियता प्रमाणित करता है—
'ओढ़ण भागी ल्योने आछां सालु ओढ़ण रे,...
छायल टकशे आछा सालू तो फाटी जशेरे'
देखिए—इंदिरा हीरालाल कापडिया लिखित प्राचीन अने अर्वाचीन समय नी स्त्रियों नो पहेरवेश, सूरत, १९३९, पृ० ६६। पद्मावत में भी गुजरात के छायल का उल्लेख है—
'फुंदिका और कसनिया राती। छायल पंडुआए गुजराती।' डॉ० अग्रवाल, पद्मावत, पृ० २२७

४—हिस्टोरिकल टेक्स्टाइल्स, प्लेट ७६ ए तथा ७७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजस्थान

राजस्थान में छपाई का काम लगभग सभी स्थानों में होता है परन्तु इस कला का सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक निखरा रूप सांगानेर के छपे कपड़ों में देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त जयपुर शहर, बाग्रु, अजमेर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा आदि भी छपाई के लिए महत्वपूर्ण हैं।

सांगानेर तथा जयपुर :

सांगानेर जयपुर शहर के दक्षिण पूर्ण में लगभग ८ मील की दूरी पर स्थित है। किसी समय यह एक समृद्ध-शाली नगर था परन्तु आज कुछ छीपा और कागज बनाने वालों की छोटी बस्ती के रूप में ही रह गया है। सांगानेर के पास ही धुंव नदी बहती हैं जिसके पानी में वनस्पति रंगों में चटकीलापन लाने वाले खनिज तत्व विद्यमान हैं।

२०वीं शती में राजकीय संरक्षण की समाप्ति और विदेशी सस्ते रंग तथा कपड़ों के प्रचलन के कारण सांगानेर की छपाई कला का तेजी से पतन हुआ। आज यद्यपि रासायनिक रंगों और छपाई तथा रंगाई के नये तरीकों का प्रचार हो गया है परन्तु भांते आज भी वही पुरानी परम्परागत प्रयुक्त होती हैं।

आजकल सांगानेर में छीपाओं के लगभग ८० परिवार हैं। सभी हिन्दू और महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत नामदेव के अनुयायी हैं। ये अपने को गुजराती छीपाओं का वंशज बतलाते हैं[१]। १७वीं शती के पूर्व सांगानेर का उल्लेख छपाई के प्रसिद्ध केन्द्र के रूप में नहीं मिलता परन्तु सादे कपड़े तथा रंगाई के केन्द्र के रूप में इसका उल्लेख मिलता है[२]। संभवत: १७ वीं शती के अन्त में यहाँ यह उद्योग प्रारम्भ हुआ होगा जब कि औरंगजेब से युद्ध और मराठों के निरन्तर आक्रमणों के कारण गुजरात के अनेक कारीगर राजस्थान आकर बस गए[३]। १८ वीं शती के अन्त तक यहाँ यह उद्योग पूर्ण विकसित अवस्था में पहुँच चुका था[४]।

यहां छापी जाने वाली वस्तुओं में साड़ी, दुपट्टे, पलंग-पोश, फर्द, चौकोरा, रूमाल तथा छींट के थान प्रमुख हैं। छपाई के लिए स्थानीय तथा अंग्रेजी दोनों प्रकार के कपड़े प्रयुक्त होते थे। आजकल बिना धुले मलमल तथा रेजा, मारकीन, लट्ठा आदि मोटे कपड़ों के थान जयपुर से मंगाये जाते हैं।

सांगानेर की सीमा में प्रवेश करते ही मैदानों में कपड़ों की धुलाई तथा रंगाई आदि के दृश्य दिखलाई देगें। छीपा परिवार का छोटा बड़ा प्रत्येक सदस्य धुलाई रंगाई और छपाई आदि के कार्यो में व्यस्त दिखलाई देगा।

धुलाई की क्रिया लम्बी होती हैं, जिसे बच्चों की सहा-यता से प्राय: स्त्रियां सम्पन्न करती हैं। धुलाई का काम बस्ती के बाहर नदी या कुओं के समोप खुले मैदानों में होता है। धुलाई के पूर्व थान के कपड़ों को आवश्यक लम्बाई में काटकर रात भर गोबर और पानी के घोल में भिगों कर रखते हैं। दूसरे दिन धोकर मैदान में फैला देते हैं और पूरी तरह सूखने के पूर्व पुन: पानी छिड़क कर गीला कर देते हैं। पानी छिड़कने और सुखाने की क्रिया दिन में ५-६ बार दोहरायी जाती है। यह क्रिया तब तक जारी रहती है जब तक कि कपड़ा सफेद न निखर आये। प्राय: आवश्यकतानुसार ३ से ६ दिन तक धुलाई की यह क्रिया

१—हिस्टोरिक टेक्सटाइल्स एट केलिको म्युजियम, पृ० १११; सांगानेर के एक प्रमुख छीपा परिवार के एक वृद्ध सदस्य ने बताया कि वे मूल रूप से मध्यप्रदेश के बनेठा नामक स्थान के निवासी हैं और लगभग ३-४ पीढ़ियों से सांगानेर में छपाई का काम करते हैं।

२—इर्विन, जॉन, इंडिया टेक्सटाइल ट्रेड इन दि सेवेंटींथ सेंचुरी, ज० इ० टे० हि०, भाग १, पृ० १४ तथा हिस्टो-रिक टेक्सटाइल, भाग १, पृ० ११०

३—गुप्ते बी०ए०, जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट, भाग १, सं० १६, पृ० १२९

४—छीपाओं में प्रचलित एक किंवदंती के अनुसार सांगानेर में सुलतान-शासन काल में नामदेव नामक एक भक्त रहता था। स्वप्न में एक दिन भगवान ने उसे वनस्पति रग तैयार करने का तरीका बतलाया। नामदेव ने यह कला अन्य लोगों को बतलायी। ललिता मिश्रा, सांगानेर प्रिंटिंग, मार्ग १८, सं० १, १९६४, पृ० २५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चलती है। इसके बाद कपड़े को स्वच्छ पानी से धोते हैं और सूखने पर हर्रे के चूर्ण को पानी में घोल कर कपड़े को भिगोते हैं। सूखने पर कपड़ा छपाई के लिए तैयार हो जाता है[1]।

सांगानेर में छपाई का तरीका और साधन अन्य क्षेत्रों के समान हैं। पहले कपड़े पर लाल या काले रंग की रेख छाप दी जाती हैं। ये दोनों ही रंग छीपा स्वयं तैयार कर लेते हैं। काले रंग के लिए लोहे के जंग, गुड़ और पानी को मिलाकर ८-१० दिन रखते है। तैयार होने पर छान कर और गोंद मिलाकर छपाई के काम में लाते हैं। लाल रंग के लिए गेरू, फिटकिरी, गोंद तथा पानी का घोल तैयार करके छपाई करते हैं।

काले या लाल से रेख की छपाई की क्रिया के बाद कपड़ों को 'एलिजराइन' के पानी में खौलाते हैं, इससे सम्पूर्ण कपड़ों में कुछ गुलाबीपन आ जाता हैं। सूखने पर पुनः धोकर मैदान में फैला देते हैं। सूखने के पूर्व पानी छिड़कते रहते हैं। यह क्रिया २-३ दिनों तक दोहरायी जाती है इससे रेख का रंग गहरा पक्का उभर आता है तथा शेष जमीन का गुलाबी रंग उड़ जाता है।

डटाई के लिए अन्य रंग तथा रंगतों के लिए सांगानेर के सभी छीपा आजकल रासायनिक रंगों का प्रयोग करते हैं। वनस्पति तथा खनिज पदार्थों से रंग तैयार करने के पुराने तरीके यहाँ के छीपा पूर्णतः भूल चुके हैं।

रेख की छपाई (चिराई) और डटाई के बाद छपे हुए स्थानों को 'रेजिस्ट पेस्ट' से ढंक दिया जाता है। यह एक प्रकार का गाढ़ा घोल होता है जो चूना, मिट्टी, गोंद तथा गेहूँ के घुन (बींधन) को एक साथ अच्छी तरह मिला कर तैयार किया जाता है। इस घोल को ठप्पों से छाप कर भांतों को ढंक दिया जाता है और फिर कपड़े पर जमीन का रंग चढ़ा दिया जाता है।

सांगानेरी छींटों में जमीन के लिए पीले, नीले और हरे की गहरी और हलकी अनेक रंगते प्रयुक्त होती हैं। पुरानी सांगानेरी छींटों के समान आज की छींटों में रंगतों की विविधता यद्यपि देखने को नहीं मिलती परन्तु आज भी सांगानेर के छीपाओं में ज़मीन के रंग के अनुकूल सामंजस्य-पूर्ण रंगों से छपाई करने की अद्वितीय सूझ बूझ विद्यमान हैं। सामान्यतः आजकल दो ही रंग छपाई के लिए प्रयुक्त होते हैं। कुछ छीपा आजकल एक ही रंग से केवल रेख छापकर साड़ियाँ तैयार करते हैं। इसके लिए नीला, गुलाबी, आसमानी आदि रंग लोकप्रिय हैं।

छपाई का काम छीपा परिवार की स्त्रियाँ भी करती हैं। स्त्रियाँ साधारणतः मोटी और सरल भांतों की छपाई करती हैं। कहीं-कहीं रेख को छपाई के बाद 'डटाई' का काम स्त्रियाँ करती हुई नज़र आयेंगी। महीन और एक से अधिक रंगों वाली भांतों की छपाई का काम पुरुष ही करते हैं। जिन परिवारों में बड़े पैमाने पर छपाई का काम होता है वहाँ दैनिक वेतन पर मजदूर भी रख लिए जाते हैं। इनको २ या ३ रुपये प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दी जाती है।

पुरानी सांगानेरी छींटों में 'चिराई' और 'डटाई' इतनी कुशलता से की गयी है कि कहीं भी महीन फ़ूल-पत्तियों का रंग रेख से बाहर निकला हुआ नहीं दिखाई पड़ता और इस प्रकार वे मुगल पच्चीकारी के नमूने के समान दिखाई देती हैं। कुछ पुरानी छींटों में बारीकी आदि ब्रश द्वारा की हुई प्रतीत होती है।

छपाई के लिए आबनूस या सागौन की लकड़ी के बने ठप्पों का प्रयोग किया जाता है। ठप्पे जयपुर में बनाये जाते हैं। यहां 'खरावदियों (ठप्पे बनाने वालों) के कई मुहल्ले हैं। मेजर हेंडले के अनुसार जयपुर में ठप्पे बनाने वालों के पूर्वज कई पीढ़ियों पूर्व मुलतान से आकर बसे[2] जो मूल रूप से ईरान के शियाओं के वंशज हैं। मेजर हेंडले के अनुसार उत्तरी भारत में सूती कपड़ों पर बारीक भांतों की छपाई के जन्मदाता ये ठप्पे बनाने वाले ही हैं[3]।

व्यापारी और छीपा अपनी पसन्द के अनुसार भांतें कागजों पर बनवाकर 'खरावदियों' को दे देते हैं। इन

१—छपाई और रँगाई सम्बन्धी जानकारी के लिए मैं सांगानेर के छीपाओं की आभारी हूँ।

२—हेंडले, एच० टी० हाल्बेन, 'आर्ट मेनुफेक्चर्स ऑफ अजमेर', जनरल ऑफ इंडियन आर्ट, भाग ३, सं० २७, १८८९, पृ० ६

३—वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कागजों को लकड़ी के टुकड़ों पर चिपका कर तथा खोदकर 'रेख' या 'डटाई' के ठप्पे बनाये जाते हैं। कुछ मोटी भांत वाले ठप्पों में आर पार छेद कर दिए जाते हैं जिससे छापते समय रंग में बुलबुले उठने के कारण धब्बे नहीं पड़ते[1]। जब बड़े क्षेत्र में एक ही रंग की छपाई करनी होती है तो ऐसे ठप्पों पर ऊन या अन्य प्रकार के रेशे के गुच्छे चिपका दिए जाते हैं। इससे ये ठीक से रंग सोखते हैं और छापते समय कपड़े पर अच्छी तरह रंग चढ़ जाता है। बारीकी तथा परिश्रम के अनुसार ठप्पों की बनवाई १० से ५० रुपये तक होती है।

आजकल जयपुर में नई भांत के ठप्पे भी बनने लगे हैं। सांगानेर में भी कुछ छीपा नयी भांतों की छपाई करते हैं। परन्तु अधिकतम छीपा पुरानी परम्परागत भांतों को ही काम में लाते हैं। पुराने ठप्पे टूट जाने पर उसी भांत का नया ठप्पा बनवा लिया जाता है। यद्यपि आजकल पुरानी भांतों की नकल पर जो ठप्पे बन रहे हैं उनमें वैसी बारीकी और घुमाव का अभाव है। भांतें भी कुछ इनी-गिनी प्रयुक्त होती हैं। संग्रहालयों में सुरक्षित पुराने ठप्पों की बारीक खुदाई देखकर आश्चर्य होता है।

फूल-पत्तियों में बारीकी, घुमाव और सुकुमारता सांगानेरी भांतों की प्रमुख विशेषता है। बूटों में फूलों का झुकाव प्रायः बायीं ओर दिखलाया जाता था। विविध प्रकार के फूलों और पौधों का संयोजन बेल और बूटों में अत्यन्त स्वाभाविक और आकर्षक ढंग से किया जाता था। सोसन, गुलाब, गुल्लाला, कमल, कुमुदनी, नर्गिस, गेंदा, गुलमेंहदी, सूर्यमुखी, जवाकुसुम, गुलदाऊदी, चंपा, कचनार, जटाधारी लिली, कनेर, केना, आदि अनेक प्रकार के फूलों का संयोजन पुरानी सांगानेरी छीटों में मिलेगा। सोसन तथा गुल्लाला के फूल सम्भवतः सांगानेरी भांतों के अधिक अनुकूल थे, अतः विविध रूपों में इनका अंकन हुआ है।

सांगानेरी भांतों में प्रयुक्त अनेकों फूल ऐसे हैं, जो राजस्थान में नहीं पैदा होते तथा जिनको यहां के कारीगरों (नक्काश तथा छीपाओं) ने शायद ही देखा हो। इस आधार पर वॉट ने लिखा है—

"Oviously many of the Sanganir designs portray flowers that are not likely to have been seen by the calico-printers nor by the block engravers of Rajputana. In spite of this circumstance, however there seems very reason to believe that the craft has been handed down for centuries and has come to us in all the purity of originol inspiration. The nature, feeling and colour reciprocity, as also the technique in printing, are all perfect, while the absence of machine regularity gives a charm that places these goods above and beyond anything as yet accomplished in Europe"[2]

फूलों के अतिरिक्त केला, खजूर, अंगूर, अनार, बैंगन आदि फलों के वृक्षों का संयोजन भी आकर्षक ढंग से हुआ है। कुछ पुरानी भांतों में तोता और मछली की आकृतियां दिखलाई देंगी। लगभग ५० वर्षों से यहां हाथी, घोड़ा, ऊंट, मोर और मनुष्य आकृतियां भी अलंकरण में प्रयुक्त होने लगी हैं, जिनका उपयोग मुख्य रूप से पर्दे, पलंगपोश, 'टेबलक्लॉथ' आदि में आजकल हो रहा है।

बूटियों में प्रायः एक ही प्रकार के फूल पत्तियों और कलियों का संयोजन बदाम, केरी, पान, मुकुट, वृत्त अथवा कलंगे के आकार में हुआ है। यदि बूटियां सोसन के फूल या पौधे की हैं तो बेल भी सोसन के फूल की होगी तथा पल्ले में बनाये जाने वाले बड़े बूटों में भी सोसन के फूलों का ही अलंकरण होगा। इस प्रकार एक साड़ी की छपाई के लिए ठप्पों की एक बड़ी शृङ्खला बनवा ली जाती थी।

कुछ बूटियों में एक से अधिक प्रकार के फूलों का अलंकरण एक ही साथ मिलेगा। कभी-कभी दो प्रकार की बूटियों के अलग,अलग ठप्पों को एक साथ छापकर तीसरे

१—लेवीस, अलबर्ट बुएल, ब्लॉक प्रिंट्स फ्रॉम इंडिया फॉर टेक्सटाइल्स, शिकागो, १९२४, पृ० १

२—वॉट, इंडियन आर्ट एट देहली, पृ० २४८-२४९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही प्रकार की बूटी बना दी गयी। उदाहरणस्वरूप 'सिहबाल-बूटी' तथा एक अन्य बूटी को एक साथ छापकर सांगानेर के छीपाओं ने अद्भुत सूझ-बूझ का परिचय दिया है। कभी-कभी एक से अधिक वृक्षों का संयोजन एक ही बूटी में कर दिया जाता। उदाहरणस्वरूप 'लटकन बूटे' में केले, सरों और सोसन के वृक्ष का संयोजन एक साथ हुआ हैं।

अंगरखा और कुरतों आदि के लिए उनके आकार और सिलाई के अनुसार अलग ढंग की छपाई की जाती थी। इनके लिए आवश्यकतानुसार २।। या ३ गज का कपड़े का टुकड़ा लेकर पीठ और आस्तीन के मुड्ढों के लिए पान के आकार में अलंकरण, गले पर बेल तथा दामन के लिए बेल और कोनिया की छपाई बड़ी कुशलता से की जाती। अगरखों के लिए तनियाँ भी उनके आकार के अनुसार बेल और बूटों से युक्त छापी जाती थीं।

विभिन्न बूटे-बूटियों तथा बेलों के नाम छीपाओं ने इनके आकार और उनमें प्रयुक्त फलफूलों के नाम पर रख दिए थे जो बहुत ही सटीक और रोचक है। कुछ बूटे-बूटियों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं[1] :

१—भलका बूटी	: नथ में डाले जाने वाले भलका (टिकरे) के आकार की बूटी।
२—इलायची बूटी	: इलायची के आकार की छोटी-छोटी बूटियां होती हैं।
३—बिच्छू बूटी	: इस बूटी में फूल-पत्तियों का संयोजन इस प्रकार होता है कि एक डाल बिच्छू के डंक के समान ऊपर उठी रहती है।
४—लटकन बूटी	: इसमें खजूर के वृक्ष के समान लटकती शाखायें बनी रहती है। यह बूटी कई पौधों के संयोग से बनायी गयी प्रतीत होती हैं। उदाहरणस्वरूप तना सरों का, लटकती शाखायें केले के पौद की तरह और ऊपर सोसन का फूल बनाया जाता है।
५—सिहबाल बूटी	: पराग युक्त फूलों का झुकाव इस प्रकार होता है कि वे सिंह के मुँख के बालों के समान लगते हैं।
६—बूड़ली बूटी	: वर्षा ऋतु में उगने वाली एक प्रकार की वनस्पति को राजस्थानी भाषा में 'बूडली' कहते हैं।
७—कैरी बूटी	: फूल पत्तियों का अलंकरण आम के आकार में होता है। सांगानेरी छींटों में विविध प्रकार की कैरी बूटियां देखने को मिलेंगी।
८—धतूरा बूटी	: धतूरे के फूल का अलंकरण रहता है।
९—धनिया बूटी	: छोटी-छोटी बूटियाँ होती हैं, जिसमें धनिये के आकार की छोटी-छोटी पत्तियाँ होती हैं।
१०—कचनार बूटी	: कचनार के फूलों का संयोजन होता है।
११—गुलदाऊदी बूटी	: गुलदाऊदी के फूल का संयोजन होता है।
१२—पंखी बूटी	: लम्बी डंडी वाले कमल या अन्य फूल को इस ढंग से बनाया जाता है कि पंखी के आकार का प्रतीत होता है।
१३— गेंदा बूटी	: गेंदे के फूल का संयोजन रहता है।
१४—सिरों बूटी	: सरों का वृक्ष बना रहता है।
१५—केड़बूटी	: केले के वृक्ष के समान लम्बे लटकते पत्तों वाला वृक्ष बना रहता है।
१६ चौबूंदी बूटी	: चार बूंददार अलंकरण रहता है।
१७ – खरबूजा बूटी	: इस बूटी में फूलदार पौधा बना रहता है। अधखिले फूल की पंखुड़ियों का अंकन खरबूजे के समान प्रतीत होता है।
१८ – रेवड़ी बूटी	: तिल की रेवड़ी के समान अंडाकार छोटी बूटियाँ होती हैं।

१—ये नाम मुझे सांगानेर के एक वृद्ध छीपा से प्राप्त हुए। नयी पीढ़ी के लोगों में ये नाम नहीं प्रचलित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१९—लाड्डू बूटी : फूल पत्तियों का संयोजन गोलाकार होता है।

२०—बेवड़ी बूटी : जिस प्रकार पनिहारिन सिर पर बेवड़ा (घड़ा) क्रमशः बड़ा-छोटा रखती है उसी प्रकार इस बूटी में नीचे बड़ा फूल बीच में छोटा और ऊपर कली या छोटा सा फूल बना रहता है।

२१—माखी बूटी : मक्खी के समान छोटी-छोटी बूटियों का घना भराव होता है।

२२—कमल बूटी : अधखिला या पूरा खिला कमल का फूल रहता है।

२३—पतासी बूटी : चीनी के बताशे के समान अर्द्ध-गोलाकार फूल होता है।

२४—गुलाव बूटी : गुलाव के फूल और पत्तियाँ बनी रहती हैं।

२५—दाख बूटी : अंगूर के गुच्छे के समान अलंकरण होता है।

२६—मुकुट बूटी : मुकुट के आकार की बूटी होती है।

२७—पान बूटा : पान के आकार में फूल पत्तियों का संयोजन होता है।

२८—बिजोरा बूटी : बिजोरा नीबू के आकार में अलंकरण रहता है।

२९—कटार बूटी : कटार या लम्बे कलंगे के आकार में फूल-पत्तियों का अलंकरण होता है।

३०—चौबगला बूटी : चार विपरीत दिशाओं में बूटियों का रूख होता है।

३१—मिंडका बूटी : यह वास्तव में जंगला होता है, जिसमें बूंटियां हाथ पैर फैलाये मेढ़क के समान प्रतीत होती हैं।

३२—छिपकी बूटी : छिपकली के आकार की बूटी।

३३—प्याली बूटी : प्याले के आकार के फूलों का संयोजन होता है।

३४—दुक्कैरी की बूटी : सम्भवतः कैरी के आकार की बूटी होती है।

३५—पारचे की बूटी :

३६ दुपत्ती बूटी[1] : दो पत्तियों का संयोजन होता है।

३७—दो फूल बूटी : दो फूलों से युक्त पौधे का संयोजन होता है।

३८—कानी बूटी : बूटी में एक फूल और पत्तियों का संयोजन होता है:

३९—पचडोढ़ी : कमल के आकार के ५ फूलों का संयोजन होता है।

४०—मिरिच बूटी : पत्तियों का अंकन हरी मिर्च के समान प्रतीत होता है।

४१—हंसुआ बूटी : बूटी में पत्ती का अंकन हंसुए के समान गोलाई में होता है।

४२—झाड़फूल बूटी : सोसन के फूल और पत्तियों का अलंकरण होता है।

४३—सुरजमुखी बूटी : सुर्यमुखी के फूल और पत्तियां बनी रहती हैं।

४४—गंगाघाट बूटा : इसमें एक मंदिर दिखाया जाता है जिसके नीचे कमल और मछलियों से युक्त नदी बनी रहती है।

४५—परीबूटा : पंख फैलाए परी की आकृति बनी रहती है।

४६—मोरड़ी बूटी : पंख फैलाये मोर बना रहता है।

४७—हाथी बूटा : हाथी की आकृति बनी रहती है।

४८—घोड़ा बूटा[2] : घोड़े की आकृति रहतो है।

४९—सांकडी की बेल : सांकल के समान अलंकरण रहता है।

५०—पांदड़ी की बेल : घुमावदार बेल होती है, जिसमें पत्तियां बनी रहती हैं।

१—संख्या ३३-३६ तक की सांगानेरी बूटियों के नामों का उल्लेख डॉ॰ वासुदेव शरण अग्रवाल ने किया है, भारतीय कसीदाकारी, पृ० ७

२—उपर्युक्त सं० ४४ से ४८ तक के बूटे अधिक पुराने नहीं हैं। लगभग ५० वर्षों से इनका प्रयोग होने लगा है। विशेषरूप से पर्दे, चादर और टेबलक्लॉथ आदि में इनको छापा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५१—बेलपत्र की बेल : घुमावदार बेल में बेलपत्र के समान तीन पत्तियाँ बनी रहती है।

५२—नीमपत्ती की बेल : नीम के समान कटावदार पत्तियों की लहरदार बेल होती है।

५३—अंगूर की बेल : अंगूर के गुच्छे बने रहते हैं।

५४—मछली की बेल : पत्तियों का अंकन इस प्रकार होता है कि देखने में मछलियों के समान प्रतीत होता है।

५५—गुलाब की बेल : गुलाब के फूल और पत्तियों का संयोजन होता है।

५६—फुल्लरी बेल : महीन बेल होती है।

५७—चौफूली बेल

५८—कमल फूल की बेल

५९—सुग्गा बेल

६०—रमजोर की बेल

६१—बेलपत्र का कंगूरा

६२—कलस का कंगूरा

६३—कली का कंगूरा

६४—लहरिया

उपर्युक्त भांतों के अतिरिक्त पुरानी सांगानेरी छींटों में असंख्य प्रकार के बूटे-बूटियाँ मिलते हैं, जिनके नाम अब यहाँ के छीपा भूल चुके हैं। बूटे-बूटियों की छपाई के अतिरिक्त पूरी जमीन पर विभिन्न प्रकार के जाल. लहरिया और बेलों का भराव भी लोकप्रिय था।

एक ठप्पे में साधारणतः एक, दो, तीन या पाँच बूटियाँ रहती हैं। ये क्रमशः बूटा, दुग्गा, तिग्गा और पंजा कहलाते हैं। महीन भांत के घने भराव के लिए ठप्पे में बूटियों की संख्या अधिक रहती है।

साँगानेरी छपाई की यह विशेषता है कि छापने के बाद महीन कपड़ों में दोनों ओर समान रूप से भांते उभर आती हैं। साड़ी, दुपट्टा, रूमाल आदि की छपाई के लिए मलमल या अद्धी काम में लायी जाती है। लंहगे, चादर और पर्दे आदि की छपाई रेजा, मारकीन या खादी पर होती है।

केलिको संग्रहालय, भारत कला भवन, प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, तथा भारतीय संग्रहालय (कलकत्ता) में सांगानेरी छींटों का बड़ा संग्रह सुरक्षित है। इन छींट के कपड़ों में से कुछ में 'सवाई जैपुर' की मुहर है। कुछ में संवत् १९२२, १९३६ या १९९९ आदि स्पष्ट रूप से छपा है जब कि कुछ में संवत् अस्पष्ट है।

लहंगे के लिए थानों की छपाई जयपुर शहर में होती है। इनमें जमीन का रंग प्रायः गहरा लाल, नीला, काही या पीला होता है और इन पर छापी जाने वाली भांतों में पतासी बूटी, माखी बूटी, बेवड़ी बूटी तथा पांदड़ी की बेल आदि प्रमुख हैं।

सफेद मलमल या अद्धी पर काले, लाल और कत्थई रंग से साड़ी, रूमाल, पटके एवं रामनामी दुपट्टों की छपाई जयपुर शहर में ही होती है। इनमें सांगानेरी भांतों के समान ही महीन काम की भांतें प्रचलित हैं।

आजकल जयपुर के कुछ व्यापारी अपने यहां कारीगरों से सांगानेरी ढंग की छपाई भी करवा रहे हैं, परन्तु बूटियों तथा रंगों के गलत चुनाव के कारण ये कपड़े भद्दे लगते हैं। उदाहरणस्वरूप साड़ी, लुंगी और कुर्तों आदि में बूटियां साँगानेरी परन्तु किनारा आधुनिक और बेमेल छाप दिया जाता है। इसी प्रकार रंग योजना भी बेमेल और आँखों को खटने वाली रहती है।

राजस्थान में छपाई के अन्य केन्द्र :

राजस्थान में छपाई के अन्य केन्द्रों में अजमेर, जोधपुर, कोटा, उदयपुर, बाड़मेर, जैसलमेर आदि महत्वपूर्ण है।

अजमेर में चादर, पलंगपोश चंदोवा और पर्दे इत्यादि की छपाई बड़ी मात्रा में होती थी। इनके लिए स्थानीय कपड़ों के अतिरिक्त अंग्रेजी 'ब्रॉडक्लाथ' का प्रयोग किया जाता था। ईस्ट इंडिया कं० के विवरणों के अनुसार यहाँ अंग्रेजी बॉडक्लाथ की बड़ी खपत थी[१]। यहाँ के छपे कपड़ों में सफेद, मखनिया या प्याजी रंग की जमीन पर फूलपत्तियों का सारे में जाल या कलंगों की छपाई होती है। अलंकरण प्रायः लाल रंग की विभिन्न रंगतों से तथा

१—लेटर्स रिसीव्ड बाय ईस्ट इंडिया कंपनी, भाग ४, पृ० २४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रेख काली से छापी रहती हैं[१]। चारों ओर बेल रहती है जिसमें खजूर के पत्तों के समान फैले फूल हलके और गहरे लाल से बने रहते हैं। छोर पर सादी जमीन छोड़ दी जाती है। साड़ी और दुपट्टों में आंचल में मेहराब में अलंकरण रहता है[२]।

जोधपुर में जयपुर के समान रेजा या खादी के मोटे कपड़ों पर लंहगे आदि की छपाई होती है। इनमें गहरे लाल, काही या नीले रंग की जमीन पर बड़े बल बेलदार पट्टियों का समानान्तर पास पास भराव रहता है। भांते अधिकतर परम्परागत ज्योमितीय आकार की होती हैं[३]। प्रायः गहरे लाल रंग की जमीन में भांतें चटकीले लाल से, काही जमीन में पीले और लाल से तथा नीले रंग की जमीन में चटकीले बैंगनी रंग से छापी हुई होती हैं।

उदयपुर में मुख्यरूप से दुपट्टे, कमरबंद और पगड़ियों की छपाई होती है। इनमें जमीन सफेद या हलके बदामी रंग की रहती थी जिस पर गहरे लाल की दो रंगतों से फूलदार बूटे और कलंगे आदि छापे जाते थे[४]। रेख कालापन लिए गहरे लाल से और डटाई हलके लाल से रहती थी। कभी-कभी हरी पत्तियाँ और पीले फूल छापे जाते थे[५]।

कोटा में अलग ही ढंग की आकर्षक छपाई होती थी। सफेद कपड़ों में रेजिस्ट पेस्ट से भांतें छाप दी जाती थीं और फिर नीला या लाल, जमीन का रंग चढ़ा दिया जाता था। धोने पर नीले या गहरे लाल रंग की जमीन में सफेद रंग की भाँतें उभर आती थीं। कभी-कभी इनको रेख छाप कर बांध दिया जाता था और कभी यों ही छोड़ दिया जाता था।

श्री टी०एन० मुखर्जी के अनुसार कोटा राज्य में स्थित बरार शहर में बड़े पैमाने पर छपाई और रंगाई का काम होता था। १९वीं शती के अन्त में यहाँ लगभग १०८ खत्री परिवार इस काम में लगे हुए थे[६]।

बाड़मेर और जैसलमेर में गहरे लाल और काही रंग की जमीन में मोटी भांतों की छपाई होती थी। पिछले कुछ वर्षों से कुर्ते, लुंगी, पर्दे और चादर के रूप में इन स्थानों के छपे कपड़ों की फैशन बढ़ गइ है।

लखनऊ के राजकीय संग्रहालय में स्थित छपी हुई एक दोहर में आसमानी जमीन पर कृष्ण और सखी भांत के बूटे छपे हुए हैं। हाशिये में तोता की जोड़ी के बूटे हैं। एक अन्य उदाहरण में गाय और कबूतर आदि की आकृतियाँ छपी हैं[७]। कला भवन में स्थित एक नमूने में भी सफेद सूती जमीन में कबूतर की आकृति छपी है। इस प्रकार की मोटी भांतें सम्भवतः सांगानेर के अतिरिक्त राजस्थान के अन्य किसी केन्द्र में भी छापी जाती थीं।

भारत कला भवन स्थित कुछ पटकों में खड़ी के रंगों की छपाई है। इनकी भांतें तथा रंग योजना आदि पूर्णतः राजस्थानी प्रतीत होती है। इनमें रेजिस्ट पद्धति का प्रयोग नहीं हुआ। इन पटकों की जमीन मुंगिया रंग की है, जिस पर लाल, गुलाबी, पीले तथा सफेद आदि रंगों से किनारे की बेल और आंचल की छपाई हुई है।

✓उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश में कन्नौज, फर्रूखाबाद, लखनऊ, जहाँगीराबाद (बुलन्दशहर), जफरगंज (फतेहपुर) और टांडा (फैजाबाद) इत्यादि छपाई के महत्वपूर्ण केन्द्र रहे

---

१ — वॉट, पृ० २४७
२ — वही
३ — वही
४ — वही, पृ० २५०
५ — वॉटसन ने अपनी नमूनों की पुस्तक में उदयपुर के छपे दुपट्टे का नमूना दिया है, इसमें सफेद सूती जमीन पर हरे, नीले और गहरे लाल से छपाई है। आंचल में बूटे हैं। देखिए लखनऊ के अमीनुदौला पुस्तकालय में स्थित — वॉटसन की नमूनों की पुस्तक, भाग ३ सं० १२६
६ — मुखर्जी, टी० एन०, पृ० १५५
७ — इन उदाहरणों की पंजींकरण सं० ६०, २४८, ए। १६०।१ तथा ए। १६७।१ आदि हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के लगभग सभी शहरों में न्यूनाधिक मात्रा में छपाई होती थी। सभी स्थानों में छपाई का तरीका लगभग एक समान ही था। सैयद मुहम्मद हादी ने उत्तर प्रदेश में प्रचलित छपाई के दो तरीकों का विस्तार से वर्णन किया है, जो संक्षेप में निम्नलिखित है[1]।

१–तेलचोल या तेलिया पद्धति

इस विधि में वनस्पति तेलों के प्रयोग तथा धुलाई की लम्बी क्रिया द्वारा कपड़े पर एक विशेष प्रभाव उत्पन्न किया जाता था। अनेक व्यक्तियों की सहायता से यह लम्बी विधि सम्पन्न होती थी। इसके लिए मुख्य रूप से अंग्रेजी 'लांग क्लाथ' या नैनसुख के थान प्रयुक्त होते थे जिनको ६-७ गज के टुकड़ों में काट दिया जाता था। एक बार में साधारणतः २० बड़े टुकड़ों पर धुलाई एवं तेल चलाई इत्यादि की क्रिया एक साथ सम्पन्न होती थी।

सबसे पहले ये टुकड़े तेल चला या चमार को दिए जाते थे[2]। वह इन्हें भेड के मल और पानी के घोल में रात भर भिगो कर रखता था। दूसरे दिन धोबी इन्हें धोकर पुनः तेलचला को दे देता था। अब २½ से ३ सेर अंडी या तिल के तेल, सज्जी, भेड़ के मल तथा पानी के घोल में अच्छी तरह भिगोकर और निकाल कर ३-४ दिन ऐसे ही छोड़ दिया जाता था। चौथे दिन इन्हें धूप में सुखाकर पुनः उसी घोल में भिगोया जाता था। सुखाने और उक्त घोल में भिगोने की यह क्रिया १० से १५ दिन तक दोहराई जाती थी। इससे कपड़े सफेद नीखर जाते थे। तब स्वच्छ पानी में धोकर छीपा के पास भेज दिए जाते थे।

छीपा इन्हें हर्रा, बहेडा, धवाई के फूल, वालछड़ की जड़, खोपरा, कपूर-कचरी और नागरमोथा की जड़ इत्यादि के बारीक चूर्ण तथा पानी के घोल में भिगोकर सुखाता था। अब कपड़े 'कुंदीगर' को दे दिये जाते थे जो इन्हें एक तख्ते पर रख कर मुंगरी से पीटता था। इस क्रिया के बाद कपड़े की सतह चिकनी हो जाती थी।

छपाई के लिए प्रयुक्त रंग विभिन्न प्रकार की वनस्पति और खनिज पदार्थों से तैयार किये जाते थे। इन्हें गाढ़ा करने के लिए धौ के फूल या बबूल की गोंद प्रयुक्त होती थी[3]। पहले काले रंग से छपाई की जाती थी जो 'ठेकाई' या 'स्याही की छपाई' कहलाती थी। इसके बाद गेरुवा रंग से रेख छापी जाती थी।

छपाई के बाद कपड़ों को स्वच्छ पानी में धोकर सुखा दिया जाता था। सुखने पर कपड़ों को पुनः हर्रे के घोल में भिगोया जाता था। अब हल्दी, लोध, मुलहठो, कुलंजन, फिटकरी, धौमर, मैदा और घी के मिश्रण तथा पानी से गाढ़ा घोल तैयार करके छपाई की जाती थी। इसे 'हलकारी' कहा जाता था। इसके बाद कपड़ों को मजिष्ठ, धवाई के फूल डले पानी में डाल कर खौलाया जाता था। इससे 'हल्कारी' की छपाई किए हुए स्थानों में पक्का लाल रंग चढ़ जाता था।

अब ये कपड़े पुनः तेलचला द्वारा गोबर और पानी के घोल में भिगो कर सुखाये जाते थे। इस घोल में भिगोने और सुखाने की यह क्रिया कई दिनों तक चलती थी। तब ८ से १२ दिन धूप में फैलाकर पानी छिड़कने और सुखाने की क्रिया (पचौआ) की जाती थी जिससे अनावश्यक स्थानों में चढ़ा मजिष्ठ का लाल रंग उड़ जाता था एवं जिन हिस्सों में हलकारी से छपाई की हुई होती थी वे चटक लाल रंग में निखर आते थे।

कपड़ों की सतह चिकनी और चमकदार करने के लिए उसे भैंस के दूध और लाजवर्द के घोल में भिगो कर सुखाया जाता था। यह क्रिया 'आबी करना' कहलाती थी। इसके बाद कपड़ों पर नीले रंग से 'डटाई' की जाती थी और धोकर पुन; आबी करने की क्रिया दोहरायी जाती थी। इसके पश्चात् क्रमशः हरे, गुलाबी और पीले आदि रंगों से डटाई की जाती थी।

भांतों की छपाई का काम पूरा होने पर छपे हुए हिस्सों को रेजिस्टपेस्ट' से ठप्पे द्वारा छाप कर ढँक दिया

१—हादी, पृ० ४५-५०

२—धुलाई की क्रिया प्रायः सभी स्थानों में चमारों के हाथ में थी, टी०एन० मुखर्जी, पृ० ३४६

३—सिलबर्ड मोनोग्राफ ऑन काटन फेब्रिक्स, पृ० ४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता था और तब कपड़ों पर जमीन का रंग चढ़ा दिया था। बसन्ती, खाकी, गुलाबी, सब्ज, आसमानी, फाखताई, पिस्तई, मलागिरी, नारंगी, सुर्ख, धानी या बैंगनी आदि रंग जमीन की रँगाई के लिए विशेष रूप से प्रचलित थे। कभी-कभी हाशिये की जमीन का रंग भिन्न होता था। जमीन की रंगाई के बाद कपड़ों को धोकर कुंदी कर दी जाती थी।

छपाई का दूसरा तरीका

छपाई का दूसरा तरीका सरल, कम समय और कम खर्च वाला था। इसमें तेल का प्रयोग नहीं होता था। अतः धार्मिक दृष्टि से यह तरीका शुद्ध माना जाता था। इसके लिए पहले कपड़ों को सज्जी मिट्टी आदि के साथ खौलाकर और धोकर कलफ पूरी तरह निकाल दी जाती थी। सूखने पर हर्रे और पानी के घोल में भिगों कर सुखाया जाता था। तब काले, गेरूआ और लाल रंग से छपाई की जाती थी। इसके पश्चात् ऊपर वर्णित तेलिया पद्धति के अनुसार मंजिष्ट के घोल में खौलाया जाता था। सूखने पर धावी करके पीले और हरे आदि रंगों से छपाई की जाती थी।

छपाई के प्रमुख केंद्र

कन्नौज और फर्रूखाबाद

कन्नौज छपाई के प्राचीनतम केन्द्रों में से है। जिस प्रकार गुजरात के छीपिओंओ ने अन्य क्षेत्रों में जाकर इस कला का विस्तार किया, वही श्रेय कन्नौज के छीपाओं को भी प्राप्त है। फर्रूखाबाद, लखनऊ, टांडा तथा उत्तर प्रदेश के अन्य कई शहरों में छपाई कला का विकास करने वाले कारीगर मूलरूप से कन्नौज के हो हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका हैं, हर्षचरित से एक सुविकसित छपाई उद्योग की झलक मिलती है। कन्नौज की यही प्राचीन परम्परा मध्य युग तक बनी रही। जब शासन का केन्द्र कन्नौज न रहा तो इन बदलती परिस्थितियों का प्रभाव यहाँ के उद्योग धंधों पर भी पड़ा। १९ वीं शती में आते-आते यहाँ छपाई उद्योग समाप्त प्रायः हो चुका था[१]।

मुसलमान नवाबों के शासन काल में बहुत बड़ी संख्या में कारीगर फर्रूखाबाद जाकर बस गये[२]। नवाबों की कलाप्रिय रुचि और संरक्षण से प्रोत्साहन पाकर अल्पकाल में ही यहाँ यह उद्योग विकसित अवस्था में पहुँच गया तथा छपाई उद्योग के प्रमुख केन्द्रों में फर्रूखाबाद की गणना होने लगी।

छपाई के लिए कन्नौज में गाढ़ा, गजी और धोती जोड़ा जैसे मोटे देशी कपड़ों का प्रयोग होता था[३] परन्तु बाद में अंग्रेजी कपड़ों का प्रयोग होने लगा।[४]

पलंगपोश, लिहाफ, फर्द, तोशक, पर्दे इत्यादि तथा पहनावे के लिए छींट के कपड़ों की छपाई कन्नौज में होती थी। रजाई और फर्द आदि में जमीन में महीन फूल पत्तियों का जाल और हाशिये में दुहरी या तिहरी बेल रहती थी। दीवालगीर के रूप में यहां के छपे कपड़े यूरोप को निर्यात किए जाते थे[५]। यूरोप को निर्यात किए जाने वाले दीवालगीर और पर्दे सामान्यतः अंग्रेजी कपड़ों पर छापे जाते थे। भारत के अन्य भागों में भी यहा के छपे कपड़ो की पर्याप्त खपत होती थी[६]।

केलिको संग्रहालय में संग्रहीत १९ वीं शती के अंत के एक 'दस्तरखान' में सफेद जमीन में लाल, बैंगनी, नीले, पीले और काले से फूलपत्तियों युक्त घुमावदार टहनियों का जाल है। बीच-बीच में उड़ते हुए पक्षी छपे हैं। केन्द्र में तथा चारों ओर थोड़ी थोड़ी दूर पर गोलाकार अलंकार हैं। हाशिये में बेल है।[७]

पहनावे के लिए छापी जाने वाली छींटों में 'छींटकंदी' और 'छींट बूटेदार' उल्लेखनीय हैं। 'छींट-कन्दी' अंग्रेजी

१—हादी, पृ० ४४ २—वही
३—मुखर्जी, टी० एन०, पृ० ३५०
४—वॉट, पृ० २४२
५—मुखर्जी, टी० एन०, पृ० ३५१
६—वही
७—हिस्टोरिक टेक्सटाइल्स एट केलिको म्युजिक, प्लेट २६ तथा पृ० ५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कपड़ों पर छापी जाती थी जिसका उपयोग मारवाड़ी स्त्रियां पहनावे के लिए करती थीं[१]। छींट बूटेदार प्रायः लहंगे और कुर्ते के लिए प्रयुक्त होती थी।

फर्रुखाबाद में भी छपाई के लिए गाढ़ा और गजी जैसे मोटे देशी कपड़े ही प्रयुक्त होते थे। यूरोप को निर्यात किए जाने वाले कपड़ों (पलंगपोश, पर्दे, तोशक आदि) की छपाई, यूरोपीय मांग के अनुसार मेनचेस्टर के बने लांग-क्लाथ पर की जाती थी[२]। सूती कपड़ों के अतिरिक्त २०वीं शती के प्रारम्भ में रेशमी, साटन तथा अन्य प्रकार के कपड़ों पर भी फर्रुखाबाद में छपाई का काम होता था[३]।

फर्रुखाबाद में भी कन्नौज के समान तोशक, फर्द, लिहाफ, पलंगपोश, जाजिम, रजाई और शामियाने इत्यादि छपाई की मुख्य वस्तुएँ थीं। इनकी भांतों में ईरानी ढंग के बूटों (ट्री ऑफ लाइफ) की प्रमुखता रहती थी। बीच में बड़े ईरानी ढंग के बूटे छापे जाते थे। चारों ओर चौड़े हाशिये में फूलदार माला या मेहराबों के बीच में बूटे बने रहते थे। अलंकरण का भारी और घना होना इनकी विशेषता थी[४]। केलिको संग्रहालय का (सं० १२६२) एक पर्दा संभवतः फर्रुखाबाद का छपा है[५]। श्री इर्विन ने इसको पहचान न पाने के कारण किसी निश्चित स्थान का नाम नहीं दिया[६]।

पहनावे के लिए विभिन्न प्रकार की छींटें भी फर्रुखाबाद में छापी जाती थीं। बूंद ऊदी, बूंद सुर्ख, छींट करीला, छींट जर्दी, छींटमोमी आदि की छपाई बड़ी मात्रा में होती थी। जिनका उपयोग स्त्रियां लंहगों के लिए करती थीं[७]। छींट करेला' अंग्रेजी लांगक्लाथ पर और 'छींट-मोमी' मोटे देशी कपड़े पर छापी जाती थीं[८]। फर्रुखाबाद जिले में स्थित तिर्वा-थतिवा फर्द और 'छींट-मोमी' की छपाई के लिए तथा बिशनगढ़ 'छींट नीम शेर' की छपाई के लिए प्रसिद्ध था[९]।

'बूंद ऊदी' और 'छींट करीला' की छपाई १९वीं शती के मध्य तक बड़े पैमाने पर होती थी। बाद के वर्षों में सस्ती विदेशी छींटों का प्रचलन बढ़ जाने पर इनकी मांग क्रमशः कम होती गयी। १९ वीं शती के अन्त तक तो केवल कुछ इने-गिने छीपा ही फर्रुखाबाद में इन छींटों की छपाई करते थे।[१०]

फर्रुखाबादी छींटें नेपाल में बहुत लोकप्रिय थीं। यहाँ तक कि कुछ छीपा तो नेपाली लोगों की पसंद के अनुकूल केवल वहाँ निर्यात करने के लिए ही छींटें छापते थे[११]। १९ वीं शती में, जब इन छींटों की स्थानीय मांग क्रमशः घट गयी थी उस समय भी नेपाल में इनकी मांग पूर्ववत बनी रही नेपाल को भेजी जाने वाली छींटें सामान्यतः महीन और अच्छे प्रकार के कपड़ों पर छापी जाती थीं। मोटे देशी कपड़ों पर छपी चटकीले रंगों वाली फर्रुखाबादी छींटों की खपत पहाड़ी प्रदेशों में भी पर्याप्त होती थी। विशेषरूप से नैनीताल में ये लोकप्रिय थीं[१२]।

१—मुखर्जी, टी० एन०, पृ० ३५१
२—सिलबर्ड, पृ० ४४-४५
३—संयुक्त राज्य प्रदर्शनी, इलाहाबाद, १९१०-१९११ की रिपोर्ट, पृ० ३५०
४—वॉट, पृ० २४३
५—हिस्टोरिक टेक्स्टाइल्स, चित्र २२
६—वही, पृ० ५४
७—मुखर्जी, टी०एन०, पृ० ३५१
८—हादी, पृ० ५६
९—मुखर्जी, पृ० ३५१
१०—हादी, पृ० ५३
११—वही
१२—सिलबर्ड, पृ० ४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लखनऊ

अवध के नवाबों के समय फर्रुखाबाद के कुछ छीपा लखनऊ जा बसे[1] और कुछ ही समय में छपाई के एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में लखनऊ प्रसिद्ध हो गया। लिहाफ, फर्द, पलंगपोश आदि की छपाई यहाँ मुख्य रूप से होती थी।

लखनऊ के कारीगर मूल रूप से फर्रुखाबाद से आये। अतः कनौज, फर्रुखाबाद और लखनऊ की भांतों में समानता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है परन्तु लखनऊ की भांतें फर्रुखाबादी भांतों के समान कटावदार फूल पत्तियों युक्त होते हुए भी अपेक्षाकृत अधिक बारीक और घनी होती हैं। इन छींटों में प्रायः सफेद जमीन पर हरे, नीले और लाल रंग से महीन फूल-पत्तियों का घना भराव रहता है। कभी-कभी पलंगपोश और लिहाफ आदि में फारसी कविताओं और कुरान आदि के उद्धरणों को बड़े सुन्दर अक्षरों में छापा जाता था[2]।

छपाई के लिए सामान्यतः उच्च प्रकार का अंग्रेजी लांग-क्लॉथ प्रयुक्त होता था। खेमे के अस्तर तथा शामियानों के लिए छींटें गाढ़ा, गजी या दो सूती पर छापी जाती थीं। यहाँ की छपी 'छींटजर्द' का निर्यात युरोप में किया जाता था, जहाँ इनका उपयोग दीवालगीरों के रूप में किया जाता था[3]। भारत के अन्य भागों में भी यहाँ की छींटों की बड़ी खपत होती थीं[4]।

छपाई की दोनों विधियाँ (तेल वाली और बिना तेल वाली) यहाँ प्रचलित थीं। शामियाने, जाजिम जैसे बड़े और भारी कपड़ों की छपाई आदेश देने पर की जाती थी। खेमे के अस्तर की छपाई गाढ़ा और दो सूती पर की जाती थी। इसके लिए कपड़ों को भेंड़ के गोबर और पानी के घोल में भिगो कर स्वच्छ धो लिया जाता था। सूखने पर कपड़ों को मुलतानी मिट्टी या रामरज के पीले घोल में भिगोया जाता था। इसके बाद पुनः कपड़े को धोया जाता था। सूखने पर कत्थई और सब्जहरे से छपाई कर दी जाती थीं[5]।

अंग्रेजी छींटों का आयात बढ़ने के कारण लखनऊ के छपाई उद्योग को धक्का पहुँचा। विदेशी छींटें अपेक्षाकृत अधिक सस्ती पड़ती थी। अतः सभी स्थानों में लोग इन्हें खरीदना पसन्द करते थे। लखनऊ की छींटों की कीमत मैनचेस्टर की छींटों से दुगनी थीं[6] इसके कारण इनकी माँग घटने लगी।

आजकल लखनऊ की छींट पुनः फैशन में आ गयी हैं जिससे कारीगरों को प्रोत्साहन मिला है। आजकल यहाँ मुख्य रूप से लिहाफ, फर्द, पर्दा तथा मेजपोश आदि छापे जाते हैं। इनमें सफेद, चंदनी, नीबुआ, आसमानी तथा पिस्तई जमीनपर फूल और कैरियों युक्त महीन पत्तियों वाली शाखाओं का घना भराव रहता है। चारों ओर दोहरी-बेल का हाशिया होता है। लुंगी तथा कुर्ते जैसे पहनावे के कपड़ों में भी यह भांतें लोकप्रिय होने लगी हैं।

जहाँगीराबाद (बुलंदशहर)

बुलंदशहर जिले में जहाँगीराबाद और खुर्जा छपाई के दो प्रमुख केन्द्र थे। इन केन्द्रों में फर्रुखाबाद और लखनऊ से भिन्न प्रकार की छपाई होती थी। यहां इस उद्योग की स्थापना १७ वीं शताब्दी में जयपुर के छीपाओं ने की[7]। जहांगीर के समकालीन शासक अनूपराय के समय में राजपूताने के कुछ कारीगर जहाँगीराबाद में आकर बस गये थे।

१—हादी, पृ० ४४
२—हादी, पृ० ४५
३—मुखर्जी, पृ० ३५१
४—वही
५—हादी, पृ० ५४
६—कैन, डब्लू०एस०, पिक्चरस्क इंडिया ए हैंडबुक फॉर यूरोपीयन ट्रेवेलर्स, लन्दन, १८९८, पृ० २९०
७—हादी, पृ० ४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहाँगीराबाद के छपे कपड़ों में पीली पिस्तइ चेहरई या पीलापन लिए नीली और सफेद जमीन पर दो रंगों से महीन भांतों का भराव रहता था। पीली जमीन पर चॉकलेटी और हरे से, चेहरई जमीन पर गुलाबी और काले से, भूरे पर नारंगी और काले तथा सफेद जमीन पर हल्के नीले और काले से छपाई की जाती थी। इन छींटों में जमीन तथा अलंकरण के रंगों में सामंजस्य तथा भांतों का सुन्दर संयोजन आदि सभी तत्व मिलकर आकर्षक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण भारत के विभिन्न भागों एवं युरोप में ये कपड़े प्रशंसित थे[१]। देश विदेश की औद्योगिक प्रदर्शनियों में जहाँगीराबादी छींट आकर्षण का केन्द्र बन जाती थीं[२]।

यहां छापी जाने वाली वस्तुओं में लिहाफ, पर्दे, पलंग पोश, फर्द, मेजपोश, दीवालगीर, दरी, दस्तरख्वान, चांदनी दुपट्टा, रूमाल, जाजिम, पंखों की झालर, साड़ी इत्यादि मुख्य थीं[३]। फर्द, पर्दे, लिहाफ, पलंगपोश, दीवालगीर आदि के लिए गाढ़ा, लट्ठा, मारकीन जैसे मोटे कपड़े प्रयुक्त होते थे, जबकि दुपट्टे, साड़ी, रूमाल और झालर आदि की छपाई में नैनसुख, तंजेब जैसे महीन कपड़े काम में लाये जाते थे[४]।

धार्मिक मान्यताओं के कारण जहाँगीराबाद में धुलाई और छपाई की क्रिया में तेल का प्रयोग नहीं किया जाता था। कपड़ों को रेह और भेंड के गोबर के पानी में रात भर भिगो कर रखा जाता था। दूसरे दिन धोकर सुखा लिया जाता था और पुनः रेह के घोल में डाल कर खौलाया जाता था। इसके बाद मुंग्री से पीटकर और कुंदी करके छपाई की जाती थी[५]। यहां मोटे कपड़ों पर छापी जाने वाली छींटों में दो प्रकार की छींटें प्रचलित थीं। 'बैंजनी बूंद' और 'जरद बूँद[६]' जिनकी छपाई गाढ़े पर की जाती थी।

'बैंजनी बूंद' की छपाई के लिए कपड़े को धोकर हर्रे के घोल में डाला जाता था। उसके बाद गेरू, फिटकरी, धौमर की गोंद, मोई (मैंदा और घी) तथा पानी के संयोग से बने घोल से छपाई कर दी जाती थी। अब इन छपे हुए स्थानों का 'रेजिस्ट पेस्ट[७]' से ढक दिया जाता था। सूखने पर नीले रंग में कपड़ा रंग दिया जाता था और फिर 'रेजिस्टपेस्ट' को हटा दिया जाता था।

'जर्दछींट' की छपाई के लिए कपड़ों को हर्रे के पानी में भिगोकर काले रंग से छापा जाता था[८]। इसके बाद कपड़े को लाल रंग और सोड़ा आदि के पानी में खौलाया जाता था। यह निम्न प्रकार की मोटी छींट होती थीं, जिनका प्रयोग विशेष रूप से चमार जाति की स्त्रियाँ करती थीं[९]।

'फौहारदार' जहांगीराबाद में छापी जाने वाली अच्छे प्रकार की छींट होती थी[१०] जिसकी छपाई महीन मलमल पर की जाती थी। इसमें प्रायः सफेद जमीन में काले रंग की बूंदे होती थीं।

१—वही, पृ० ४५
२—ऑफिशियल हैंडबुक ऑफ युनाइटेड प्रोविसेंज एक्जिबीशन, अलाहाबाद १९१०-१९११, पृ० १७५, जहांगीराबाद के शादीलाल छोटेलाल और गुलजारीलाल नामक दो व्यक्तियों के नाम उल्लिखित हैं, जिन्हें अनेक प्रदर्शनियों में इनाम मिल चुके थे, वही पृ० १७३
३—हादी, पृ० ५७
४—हादी, पृ० ५७
५—सिलबर्ड, पृ० ४१
६—हादी, पृ० ५३
७—यहाँ भी 'रेजिस्ट पेस्ट' सांगानेर के समान, गोंद, चूने और बीझन (गेहूँ के घुन) से तैयार की जाती थी।
८—हादी, पृ० ५३
९—वही, पृ० ५३
१०—वही, पृ० ५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शामियानों और खेमे के अस्तर के लिए प्रयुक्त मोटे कपड़ों की छपाई जहांगीराबाद में बड़े पैमाने पर होती थी[१]।

१८८० के आस पास मि० ग्राउस बुलंदशहर के कलेक्टर थे। उन्होंने यहाँ के छपाई उद्योग को प्रोत्साहित किया[२]। ग्राउस ने योरोपीय पसंद के अनुकूल भांतें प्रचलित करवाई जो बाद में यहाँ के छपे कपड़ों की विशेषता बन गयीं। पर्दे, मेजपोश और दीवालगीर के रूप में यहाँ की छींटों का निर्यात यूरोप को होता था।

जफरगंज (फतेहपुर)

जफरगंज में अन्य स्थानों से भिन्न एक विशिष्ट शैली का विकास हुआ। यहां कलमकारी छपाई उद्योग का एक महत्वपूर्ण अंग था। अतः इस उद्योग में लगे कारीगर 'कलमकार' कहलाते थे। ये कलमकार मूलरूप से लखनऊ से फतेहपुर आकर बसे[३]।

यहाँ की छींटों में मटमैले पीले रंग की जमीन में ईरानी ढंग के बड़े-बड़े फूलदार बूटों का भराव होता है। कभी-कभी गुलदस्ते इत्यादि बने रहते हैं। प्राय: रेख गहरे कत्थई या काले से और फूलपत्तियाँ नीले और गहरे लाल से बनी रहती हैं। लिहाफ, फर्द, चादर और पर्दे आदि के हाशिये में नीली और लाल रंग की चौड़ी पट्टियों के बीच में गोलाकार बूटे छापे जाते थे। इन गोलाकार बूटों के बीच के खाली स्थानों में सुन्दर अक्षरों में आकर्षक ढंग से अरबी में कविता, कहावतें और कुरान के उद्धरण लिखे जाते थे। लिखाई का काम ब्रश से किया जाता था। प्रायः मुहम्मद रज़ा के गीतों की चुनी हुई पंक्तियां लिखी जाती थीं। लिखाई का काम लखनऊ के समान ही बारीकी और सफाई से किया जाता था।

लिखाई के अतिरिक्त छपे हुये बूटों में भी अधिकतर काम ब्रश से पूरा किया जाता था। बूटों की रेख ठप्पों से छाप दी जाती थीं एवं रंग भरने और नसें आदि बनाने का बारीक काम ब्रश से किया जाता था। ब्रश द्वारा ही फूल पत्तियों में छाया प्रकाश का प्रभाव उत्पन्न किया जाता था। इस प्रकार छपाई के साथ ब्रश के प्रयोग से समय और परिश्रम तो अधिक लगता ही था परन्तु इससे कपड़ों का कलात्मक स्तर बढ़ जाता था। इनकी कीमत सामान्य छपे कपड़ों की अपेक्षा कहीं अधिक होती थी।

१९वीं शती में कलमकारों के अनेक परिवार इस उद्योग में लगे हुए थे। १९०६ में नेविल ने मुख्य रूप से तीन भाइयों का उल्लेख किया है[४]—हशद अली, इमदाद अली तथा मुहम्मद हुसैन। इनके पितामह को जैनउल आबदीन के शासन काल में लखनऊ से लाकर यहां बसाया गया था।

यहाँ छपाई के कपड़ों में पर्दे, पलंगपोश, जांनमाज (नमाज के समय बिछायी जाने वाली दरी), मेजपोश, तोशक इत्यादि मुख्य थे। आदेश देने पर शामियाने तथा जाजिमों की छपाई भी की जाती थी। फतेहपुर में जमुना के तट पर स्थित किशनपुर में विशेषरूप से मोटे कपड़ों की छपाई होती थी। १९०६ में इस स्थान में लगभग २० परिवार छपाई का काम करते थे।

१९वीं शती के अन्तिम चरण में यहाँ के कलेक्टर मि० ग्राउस ने इस उद्योग में रुचि ली, जिससे इसके विकास को प्रोत्साहन मिला।

भारत कला भवन में संग्रहीत एक नमूना जफरगंज का छपा हुआ प्रतीत होता है। इसमें गहरे मखनियां रंग के सूती कपड़े पर बड़े-बड़े बूटों की छपाई है। बूटों की रेख काली है। फूल पत्तियों में गहरे लाल, नीले, हरे एवं बैंगनी आदि रंग प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं ब्रश का प्रयोग हुआ प्रतीत होता है।

१—हादी, पृ० ५४
२—वही, पृ० ४४
३—वही, पृ० ४५
४—डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ युनाइटेड प्रोविंसेज़ ऑफ आगरा एण्ड अवध, भाग २७, १९०६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टांडा (फैजाबाद)

छपाई के केन्द्र के रूप में फैजाबाद का महत्व १९ वीं शती में बढ़ा[१]। १९ वीं शती के मध्य तक यह छपाई का प्रसिद्ध केन्द्र बन चुका था।

यहां बैंगनी या गहरे लाल रंग की जमीन में लाल से भांते छापी जाती थीं। इसके लिए कपड़ों को पहले आलके रंग में रंगकर, 'रेजिस्ट पेस्ट' से ठप्पों द्वारा छपाई कर दी जाती थी। इसके पश्चात् नीले-रंग से या अनार के छिलकों से तैयार रंग से छपाई की जाती थी। छपे कपड़ों की घोटाई यहाँ की प्रमुख विशेषता है[२]।

टांडा में मुख्यरूप से गाढ़ा और गजी पर जाजिम, लिहाफ और तोशक आदि की छपाई होती थी। विदेशों को भेजे जाने वाले रुमाल, पर्दे तथा साड़ियों की छपाई मलमल जैसे महीन कपड़ों पर की जाती थी[३]।

१९ वीं शती के अंत में आते आते अन्य स्थानों के समान यहाँ के छपाई उद्योग का भी पतन हुआ परन्तु कुछ वर्षों पूर्व पुनः अखिल भारतीय हस्तकर्घा उद्योग संस्थान के प्रयत्नों से यहाँ की समाप्तप्राय छपाई कला को नयी शक्ति मिली।

आजकल पलंग-पोश, रजाई, मेजपोश तथा पहनावे के लिए विभिन्न प्रकार के कपड़ों की छपाई टांडा में होती है। यहाँ मुख्य रूप से पीली जमीन में रेख काली तथा फूलपत्तियों का रंग नीला या लाल होता है। भांते मोटी होती हैं। पलंगपोश और लिहाफों में प्रायः पूरी जमीन में फूल-पत्तियों युक्त टहनियों का घना भराव होता है। चारों ओर चौड़े हाशिये में दो सकरी बेलदार पट्टियों के बीच चौड़ी घुमावदार बेल होती है।

उत्तर भारत में अन्य स्थानों पर भी छपाई होती थी जिनमें काशीपुर, अलीगढ़, आगरा, बरेली, वृंदावन, मैंनपुरी, इलाहाबाद, कानपुर, बिजनौर, शाहजहाँपुर, जालौन, झांसी, जौनपुर और बनारस आदि उल्लेखनीय हैं[४]।

मथुरा तथा वृन्दावन में रामनामी दुपट्टों और रूमालों की छपाई होती थी। इनमें सफेद जमीन में लाल, कत्थई या काले से बूटियां, और संस्कृत श्लोक छापे जाते थे। मुगल काल में आगरा छपाई का बड़ा केन्द्र था, यह अंग्रेजी व्यापार-विवरणों से प्रमाणित है[५]। बरेली में महीन कपड़ों पर पंखे की झालर और पर्दों की आकर्षण छपाई की जाती थी[६]।

झांसी में मऊरानीपुर में 'छींट अग्रवार' तथा छींट 'नथनी चपेटा' की छपाई होती थी, जिसका उपयोग स्त्रियों के पहनावे के लिए होता था[७]। जालौन में 'गोलबूटी' की छपाई होती थी जिसका प्रयोग स्त्रियों के लहंगे कुर्तों आदि के लिए किया जाता था[८]।

मध्य भारत

मध्य भारत में सिरोंज, बुरहानपुर (महाराष्ट्र), उज्जैन आदि छपाई के महत्वपूर्ण केन्द्र रहे हैं। इनके अतिरिक्त ग्वालियर, रतलाम, मंदसौर तथा इन्दौर का छपाई उद्योग भी उल्लेखनीय है[९]।

मुगल काल में सिरोंज छपाई का बहुत बड़ा केन्द्र था। टेवेर्नियर के अनुसार यहां के छपे कपड़े ईरान और टर्की में

१—हिस्टोरिक टेक्सटाइल्स, पृ० ४७
२—सिलवर्ड, पृ० ४५
३—वही
४—मुखर्जी, टी० एन०, पृ० ३५२ तथा वॉट, पृ० २४४
५—लेटर्स रिसीव्ड, १६१७, पृ० ३५० तथा इर्विन, जॉन, ज०इ०टे०हि०, भाग १, पृ० १३
६—सिलवर्ड, पृ० ४५
७—मुखर्जी, टी० एन०, पृ० ३५१
८—वही, पृ० ३५२
९—वॉट, पृ० २५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोकप्रिय थे[१]। पीटर मंडी के अनुसार छपे और चित्रित कपड़ों के लिए सिरोंज को मसुलीपटटम के बाद दूसरा स्थान प्राप्त था[२]। थेवेनोट ने भी सिरोंज के छपे कपड़ों की प्रशंसा की है[३]।

बुरहानपुर में जाजिम, पर्दे, लिहाफ, पटके और पिछ-वाई आदि पर कलमकारी और ठप्पों के प्रयोग की मिश्रित विधि से भांतें बनायी जाती थीं। फूल और अन्य आकृ-तियां ठप्पों से छाप दी जाती थी जबकि टहनियां एवं अन्य बारीकियां ब्रश से पूरी कर दी जाती थीं। यहां के छपे और चित्रित कपड़ों की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें नीले का प्रयोग बहुत कम या नहीं के बराबर हुआ है। केवल हरा रंग बनाने के लिए पीले के साथ नीला प्रयुक्त हुआ है।

बुरहानपुर की भांतों में दक्षिण का प्रभाव अत्यधिक होने के कारण कभी-कभी पहचानना कठिन हो जाता है परन्तु ध्यान से देखने पर गुजरात और राजस्थानी प्रभाव भी स्पष्ट दिखलाई देगा। इस प्रकार उत्तरी और दक्षिणी छपाई शैलियों की विशेषताओं युक्त[४] बुरहानपुरी छपे वस्त्र भी इस क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

अंग्रेजी और डच ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक विवरणों से १७ वीं शती में बुरहानपुर के कपड़ों की यूरोप में लोकप्रियता प्रमाणित होती है[५]। बुरहानपुर के छपे पर्दों में प्रायः अलंकृत मेहराबों सहित फूलदार वृक्षों के गमले बने हैं। अलंकरण में रेख प्रायः काली है। फूलपत्तियों के लिए लाल और हरे रंग प्रयुक्त हुए हैं[६]। बुरहानपुरी चंदोवाओं में बीच में फूल-पत्तियों से अलंकृत बड़ा वृत्त तथा चारों कोने में चौथाई वृत्त के कोनिया होते हैं। शेष चारों ओर की जमीन में प्रायः कृष्णलीला के दृश्य बनाए गए हैं। इन दृश्यों में मनुष्य आकृतियों के अतिरिक्त पशु-पक्षियों का अंकन बड़े स्वाभाविक रूप में हुआ है। चारों ओर चौड़ा किनारा है[७]।

भारत कला भवन में एक बुरहानपुरी चंदोवा है। इसमें बीच में सफेद जमीन में गोलाकार अलंकरण है। शेष जमीन में लाल पर हरे रंग का जंगला छपा है। चारों ओर चौड़ी एवं सकरी पट्टियों में बेल, जंगले तथा बादरुम का अलंकरण है और उसके बाद चंदनी जमीन पर बूटों की छपाई हुइ है। पूरे अलंकरण में काले, लाल, हरे, बैंगनी आदि रंगों का प्रयोग हुआ है।

पंजाब

१९ वीं शती के अंतिम चरण में श्री किपलिंग लिखते हैं कि "पंजाब के प्रत्येक गांव और शहर में छपाई का काम होता है तथा पूरे पंजाब में लगभग ११३०० छीपा इस काम में लगे हुए हैं[८]।"

यहां की छपाई की भांतों पर अन्य कलाओं की अपेक्षा ईरानी प्रभाव कम मात्रा में दिखाई देता है। महीन ईरानी भांतों के स्थान पर मोटी भांतें छापी जाती थीं। ठप्पों के साथ ब्रश का प्रयोग भी अनेक स्थानों में होता था। कोटक-

१—हॉवेल, स्मिथ, "दि डाइड़ एंड प्रिंटेट केलिको—" दि इंडियन आर्ट एंड लेटर्स, भाग १४, सं० २, पृ० ८७

२—ट्रेवेल्स ऑफ पीटर मंडी इन एशिया, १६२८-३४, भाग, ३५ लंदन, १९१४, पृ० ५६ तथा ज० इ० टे० हि०, भाग १, पृ० १३; हिस्टोरिक टेक्स्टाइल्स, पृ० २५

३—थेवेनाट, जे० डी०, ट्रेवेल्स, भाग ३, अध्याय २१; ज० इ० टे० हि० भाग १, पृ० १३

४—हिस्टोरिक टेक्स्टाइल्स, भाग १, पृ० ६८

५—वही, पृ० २४

६—श्री जॉन इर्विन के अनुसार मेहराबों का अलंकरण बुरहानपुर जामा मस्जिद (१५८८ ई०) के अलंकरण से बहुत समानता रखता है। वही पृ० २६ तथा रंगीन फलक ४

७—वही फलक ४४ और ४५

८—किपलिंग, जे० एल०, 'दि पंजाब कोर्ट : पंजाब कॉटन प्रिंट्स', जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट, भाग १, स० १४, पृ० १०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मलिया (मोंटगोमरी जिले में), सुलतानपुर (कपूरथला), लाहौर आदि छपाई के महत्वपूर्ण केन्द्र थे । १९ वीं शती में इन केन्द्रों के छपे पर्दे और दीवालगीरों की मांग यूरोप में भी बढ़ रही थी[१] ।

कोटकमलिया में छपाई की वस्तुओं में पर्दे और दीवालगीर प्रमुख हैं । इनमें सफेद जमीन में अलंकरण की रेख काले रंग से ठप्पों द्वारा छापी जाती थीं, जिसमें लाल, पीले और हरे आदि रंग ब्रश से भर दिए जाते थे । चौड़े हाशिये में निश्चित दूरी पर लाल बूटे छापे जाते और बीच में पीला रंग या काली रेख से छपे बड़े-बड़े फूलों में लाल रंग ब्रश से भर दिया जाता । इन पर्दों या दीवालगीरों की तुलना किपलिंग ने १७ वीं १८ वीं शती के ईरानी पर्दों (पर्सिएन्स) से की है । १९ वीं शती में कोटकमलिया के प्रसिद्ध छीपा अल्लायार का उल्लेख किपलिंग ने किया है[१] परन्तु उसके वंशज अच्छे कारीगर नहीं हुए[२] ।

सुलतानपुर में भारत के अन्य छपाई केन्द्रों से भिन्न एक आकर्षक शैली विकसित हुई । यहां छपाई के लिए अच्छे महीन कपड़े का प्रयोग होता था, जिसे पहले गेरूआ या गहरे मखनिया रंग में रंग लिया जाता और फिर गुटेई रंग (टेराकोटा रेड) से छपाई कर दी जाती । प्राय: सम्पूर्ण जमीन में फूल पत्तियों युक्त शाखाओं के घने जाल का संयोजन रहता था । अलंकरण में दोहरी रेखाएं रहती थीं, जो सिख शैली के लकड़ी के काम के समान प्रतीत होती हैं[३] । हाशिये में मोटी और गहरे रंग की भांते बनायी जाती थीं । हाशिया प्राय: सिख शैली के समान खंभों द्वारा विभाजित किया जाता था ।

लाहौर में मोटे कपड़ों पर जाजिम, रजाई, पर्दे तथा दीवालगीरों की छपाई होती थी । इन में गेरूआ, हलकी नीली, बनफशी और हरी रंगतों की प्रधानता रहती थी । दीवालगीरों की जमीन चौखटों में बंटी रहती थी । प्रत्येक चौखट में पशु पक्षियों से युक्त ईरानी ढंग का बूटा बना रहता था । चौखटों की जमीन प्राय: ब्रश से रंगी जाती थी । हाशियों में लाल, पीले, काले और सफेद से लहरदार रेखाएं रहती थीं । १९ वीं शती के अन्तिम चरण में लाहौर के प्रसिद्ध छीपा भंडू का उल्लेख वॉट ने किया है[५] । यह सूती पर्दे और दीवालगीरों के अतिरिक्त तकिया की गिलाफों के लिए सूती मखमल पर भी छपाई करता था[६] ।

१७-१८वीं शती में लाहौर में ईस्टइंडिया कम्पनी की फैक्टरी थी परन्तु मोटे प्रकार की छपाई के कारण यहाँ के छपे कपड़े यूरोप में लोकप्रियता न प्राप्त कर सके ।[७]

१९वीं शती में लाहौर छपाई के सबसे बड़े केन्द्रों में से एक था[८] । आज भी थोड़ी बहुत मात्रा में यहाँ छपाई होती है । केलिको संग्रहालय में एक मध्य १९वीं शती का पर्दा संग्रहीत है[९] जिसे श्री इर्विन लाहौर का छपा मानते हैं । इसमें सफेद जमीन अनेक खण्डों में विभाजित है जिनमें प्राचीन ईरानी राजाओं के व्यक्तिचित्र बने हैं । बीच-बीच में मछलियों के बने बादरूमों में फूल-पत्तियों का अलंकरण है । राजाओं के नाम पास ही फारसी में लिखे हैं । इसमें काला, लाल, हरा, भूरा, और गुलाबी रंगों का प्रयोग अलंकरण में हुआ है । रेख, हाशिआ और बादरूम के रंग ठप्पों से छापे हैं तथा शेष स्थानों को ब्रश से चित्रित किया है ।

१—किपलिंग, जरनल ऑफ इंडियन आर्ट, भाग १, सं० १४, पृ० १०४
२—वही
३—वॉट, पृ० २४५
४—वही, पृ० २४५
५—वही, पृ० २४६
६—वही
७—हिस्टोरिक टेक्सटाइल्स एट केलिको म्युजियम, भाग १ पृ० २५
८—वही
९—वही, चित्र २८ तथा देखिए पृ० ५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अमृतसर में अच्छे प्रकार के महीन सूती कपड़े या मलमल पर साड़ियों की छपाई होती थी। इनके रंग और अलंकरण भारी कसीदाकारी या किमखाव के समान प्रतीत होते थे[१]।

गुरुदासपुर में बहुत कुछ लाहौर के समान छपाई की जाती थी। यहाँ रजाई के लिए छापे जाने वाले कपड़ों में रंग बिरंगे चारखाने रहते थे, जिनके बीच में एक-एक बड़े फूलों का भराव रहता था।

पंजाब में छपाई के अन्य उल्लेखनीय केन्द्र बहावलपुर, स्यालकोट और फिरोजपुर आदि रहे हैं[२]।

काश्मीर

१९ वीं शती में काश्मीर में जम्मू से ३० मील दक्षिण में स्थित साम्बर नामक छोटे से शहर में छपाई कला का विकास हुआ। यहाँ ईरानी ढंग की भांतों की छपाई होती थी। यद्यपि वॉट के अनुसार भारत के अन्य भागों के छपे कपड़ों की तुलना में यहाँ की छपाई निम्नकोटि की थी[३]।

मुख्य रूप से दीवालगीर, जाजिम, चंदोबा आदि की छपाई की जाती थी। इनमें जमीन का रंग प्राय: निबुआ होता था जिस पर लाल की विभिन्न रंगतों और हरे से छपाई की जाती थी। हाशियों के चौखटों में ज्योमितीय भांत, लहरदार रेखा या कलगों का संयोजन रहता था।

यूरोप में साम्बर के छपे कपड़े बहुत पसंद किए जाते थे। वहाँ इनका उपयोग सजावट आदि के लिए किया जाता था। १९ वीं शती में इंग्लैण्ड में इनकी मांग इतनी अधिक बढ़ गयी कि काश्मीर सरकार को इनकी बिक्री पर एकाधिकार घोषित करना पड़ा। इस प्रकार जिन कपड़ों का दाम पहले ९-१० रुपये था बाद में बढ़ कर १४ रुपये कर दिया गया[४]।

यूरोप में भारतीय छींटों की नकल पर छपाई

१८-१९ वीं शती में जब यूरोपीय देशों में भारतीय कपड़े अत्यधिक लोकप्रिय हो चुके थे तो इंग्लैण्ड और फ्रांस के कुछ केन्द्रों में भारतीय छींटों की नकल पर वस्त्र छापे जाने लगे। विशेष रूप से पर्दे, आवरण तथा रजाई के पल्ले इत्यादि पर छापी जाने वाली 'जेकोबियन', 'एलीजाबेथियन' तथा 'जार्जियन' आदि भांते वास्तव में भारतीय छपे कपड़ों की नकल ही हैं।[५] इन भांतों में यद्यपि बूटे के आकार का अंकन और संयोजन आदि भारतीय ढंग से किया गया है परन्तु अलंकरण के ढंग तथा रंगयोजना इत्यादि में बड़ा अंतर है।

सोने और चाँदी के वरक की छपाई

(टिंसल प्रिंटिंग)

सोने चांदी की छपाई जयपुर, उदयपुर, जौनपुर, दिल्ली कांगड़ा, रोहतक, लाहौर तथा गुजरात के कुछ स्थानों में की जाती थी। यह छपाई देखने में सुन्दर और आकर्षक होती है परन्तु एक या दो धोब के बाद निकल जाती है अत: पहनावे के लिए इनका उपयोग नहीं किया जाता[६]।

१—वॉट, पृ० २४६ तथा देखिए, जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट, भाग २, प्लेट ५

२—वॉट, पृ० २४६ तथा देखिए जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट, भाग २, प्लेट ५

३—वॉट, पृ० २४६

४—मुखर्जी, टी० एन०, पृ० ३५५

५—दि इंडियन टेक्स्टाइल जर्नल, फरवरी १९१९, भाग २९, सं० ३४१, पृ० २५

६—परन्तु निम्नलिखित साहित्यिक उदाहरणों से पता चलता है कि पहनावे के वस्त्रों पर भी इस प्रकार की छपाई प्रचलित थी :-

(अ) "मोतीलाग और छापे सोने", पद्मावत, पृ० २०८

(ब) "बागो लाल सुनहरी छापा, हरी इजार चरनन बिरचाऊ।
पटुका सरस बैंजनी रंग को, हंसुली हार हमेल बनाऊं ॥" विष्णुदास कृत पद, पद संग्रह, पृ० ९४

(स) पीताम्बर को चोलना कनक-छाप, तापर धरी भीनी एक तनैया' परमानंददास कृत पद, पद संग्रह, पृ० ९७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर्दे, लिहाफ, पटका, तोशक, पालकियों के आवरण, चंदोवा तथा पिछवाई इत्यादि के लिए इनका उपयोग किया जाता था। १९ वीं शती में यूरोप में भी पर्दों के रूप में ये लोकप्रिय थे[१]।

सोने और चांदी के बरक की छपाई कभी-कभी रंगीन छपाई के साथ भी की जाती थी जो जड़ाऊ काम या मीनाकारी के समान प्रतीत होती थी। छपाई की विधि संक्षेप में निम्न लिखित है[२] :—गोंद, राल, खड़िया को निश्चित मात्रा में लेकर पानी के साथ खौलाते हैं, जिससे एक गाढ़ा घोल तैयार हो जाता है। मेंथी को पानी के साथ खौला कर एक दूसरा गाढ़ा घोल तैयार किया जाता है। दोनों घोलों को अच्छीतरह मिला दिया जाता है। इस घोल से ठप्पे द्वारा कपड़ों पर छपाई कर दी जाती है। एक महीन कपड़े से रूई की पोटली बना कर बरक उसमें चिपकाकर छपे हुए हिस्सों पर चिपका दिया जाता है। इसके पश्चात् छपे कपड़ों पर दुआली से घिस कर चमक पैदा की जाती है।

कला भवन में इस प्रकार की छपाई के सुन्दर नमूने हैं। दो फटके हैं, जिनमें अद्धी की महीन जोगिया रंग की जमीन पर सुनहरी बूटियों की छपाई है। किनारों में सतदानी फूल की लहरदार बेल है। दोनों ओर चौड़ा आंचल है जो लहरदार बेल द्वारा तीन भागों में विभाजित है। ऊपरी खंड में कैरी की बूटियों का घना भराव हैं। बीच में बदामा आकार के जंगले में बूटे छापे हुए हैं। निचले खंड में पुन: बूटियों का घना भराव है।

एक उदाहरण (जो सम्भवत: लंहगे के लिए छापा गया था) में सफेद कपड़े पर रूपहली बरक से फूलों की छपाई की गयी है। फूलों की रेख लाल है तथा पत्तियां हरी हैं। एक ओर चौड़ा रूपहला किनारा है।

सांगानेर के छपे एक अन्य उदाहरण में सफेद जमीन पर फूलदार बूटे छपे हैं। बूटों में फूल लाल तथा बैंगनी और पत्तियां हरी हैं। बूटे की रेख सोने से छपी हैं। किनारे में सुनहली रेख वाली छोटी बूटियों की छपाई है।

भारत कला भवन स्थित उदयपुर की सोने से छपी हुई एक ध्वजा में रेशमी केसरिया रंग की जमीन में बीच में सूर्य और चारों ओर अलंकृत आकार के बादल छपे हुए हैं[३]। इसी प्रकार की एक ध्वजा अहमदाबाद केलिको म्यूजियम में भी है[४]।

१—मुखर्जी, पृ० ३५४
२—हादी, पृ० ५५
३—पं० सं०, ३।८५।००
४—देखिए, हिस्टोरिक टेक्स्टाइल्स, प्लेट ८६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट

१८वीं शती के ब्रजभाषा के ग्रंथ चकत्ता वंशप्रकाश (चकत्ता ४३) में निम्नलिखित कपड़ों के रंगों की सूची मिलती है :

'अथ साल वा सब कपड़ा का रंग । मदारी १ । लाजवर्दी २ । नाफुरमानी ३ । आसमानी ४ । वनफ ५ । काफूरी ६ । फाकताई ७ । सुरमई ८ । तूसी ९ । संकरी १० । संदली ११ । बादामी १२ । तुरंजी १३ । सुतरी १४ । गुलाबी १५ । सफतालू १६ । तारंजी १७ । उन्नाभो १८ । लख्यो १९ । किरमिजो २० । कासिनी २१ । अगरवानी २२ । जाफरानी २३ । चंपई २४ । कायासी २५ । जोजी २६ । नासपाली २७ । अनवी २८ । पिस्तै २९ । काही ३० । जुमुरदी ३१ । अमोआ ३२ ।

१९वें शती की प्रसिद्ध पत्रिका अवध पंच (होली अंक, १९।३।१८७८) में निम्नलिखित रंगों की सूची दी है :

(१) सब्ज (२) काही (३) धानी (४) जमुर्रदी (५) जंगारी (६) पिस्तई (७) माशई (८) बैंजनी (९) नाफरमानी (१०) फाख्तई (११) सुरमई (१२) अगरई (१३) मलागीरी (१४) कासनी (१५) खाकी (१६) संदली (१७) बादामी (१८) फालसई (१९) लाजवर्दी (२०) चम्पई (२१) ककरेजी (२२) तूसी (२३) खसखसी (२४) काफूरी (२५) गुलेनार (२६) गुलाबी (२७ जाफरानी (२८) आबी (२९) प्याजी (३०) शर्बती (३१) नारंजी (३२) हरमुजी (३३) सिन्दूरी (३४) हिनाई (३५) शंजर्फी (३६) लाखो (३७) अब्बासी (३८) करौंदिया (३९) उन्नाबी (४०) बनफशई ।

१९वीं शती के अन्तिम चरण में बनारस के कवि रससिन्धु लिखित 'जमुना तरंगिनी' (बनारस, संवत् १९३९ में प्रकाशित) यमुना और सखियों के वस्त्रों के वर्णन के प्रसंग में निम्नलिखित रंगते वर्णित है :

'सारी है सिंधूरी रंग चन्दनी अंगूरी वेस,
बैंगनी करौंदी फाकताई फालसी हैं ।
कहैं रससिन्धु अरगजी ककरेजी न्यारी,
सेबकी बसंती सफतालू सुरमई हैं ।।
चूनरी पिरोजी औ अबीरी हू नारंगी चारू,
भगुआ कुसुंभी सुवापंखी नीबुवाई हैं ।
पहिर के किरमची पानीपत लाखी [illegible],
जमुना के संग सखी स्याम पास आई हैं ।।
लाल खसखसी कारी पीरी हरी रंग सारी,
कासनी बदामी धानी सोसनी हवासी है ।
कहै रससिन्धु आबी केसरी गुलाबी ऊदी,
प्याजी सरबती नीली कोकई कपासी है ।।
गुलेनार खाखी सिंगरफी आसमानी तूसी,
गंधकी कपूरी काही और गुलेबासी है ।
पहिरे चम्पई चारू संदली जंगाली,
बेश स्याम पास आई सखी जमुना हुलासी है ।'

१९वीं शती के ही हरिचन्द नामक कवि लिखते हैं[1] :–

'लाल फालसही औ गुलाबी गुलाबांसी वेस
बहरि बदामी सुखे संदली सुधारे हैं ।
कासनी कुसुंभी ककरेजी कोकई करंजी केस
केसरी कपासी फाखताई तेज वारे हैं ।।
सोसनी सोनोला और सवतालू सरबती
आबी आसमानी नासपाल रूचिकारे हैं ।
काम रंगरेजा रंगरेजा ए तमाम सारे
सूखन को मानो आसमान मे पसारे हैं ।।'

एक बुंदेलखंडी फाग में भी कुछ रंगतों के नाम हैं[2] :–

'चुनर चारू चपेटन वारी पैरे यार हमारी ।
कउं पिस्तई प्याजी जंगाली अगरई कउं अनारी ।
पीरी कउं हरीरी नुकरई कुसुमानी कउं कारी ।
कउं सुस्तई कउं सरदई सुंदर सुर्खी कउं सुनारी ।
कांलो लेवें नाम ईसुरी सबरे रंगन संवारी ।।

१––भारत कलाभवन के संग्रह में १९ वीं शती में प्रकाशित एक खंडित पुस्तक से जिसमें सावन के गीत दिए हैं ।
२ - परमार, श्याम, 'भारतीय लोक गीतों में रंग वैचित्र्य', कल्पना, वर्ष ५० अंक ८, १९५४ पृ० ३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट २

सांगानेरी छींटों का वर्णन करते हुए कुछ बूटे-बूटियों के नाम दिये गये हैं, जो आज भी वहाँ के छीपाओं में प्रचलित हैं। चित्रित फलकों में उनकी पहचान इस प्रकार है :—

नाम	फलक संख्या	आकृति संख्या	नाम	फलक संख्या	आकृति संख्या
झलका बूटी	२२	१२४	मुकुट बूटी	१९	९५
इलायची बूटी	१४	२९	पान बूटी	२५	१६०
बिच्छू बूटी	१४, १५	३१, ४१	बिजौरा बूटी	१९	९०
लटकन बूटी	१६	४५	कटार बूटी	१६	५६
सिंहबाल बूटी	१५	३५	चौवगला बूटी	२१	११२
बूड़ली बूटी	१६	४६	मिंडका बूटी	२६	१७४
कैरी बूटी	१६	५९	कानी बूटी	१३	३
धनिया बूटी	१८	८४	छिपकी बूटी	२७	१८३
कचनार बूटी	१६	५८	मोरड़ी बूटी	२१	१०८
पंखी बूटी	२०	१०२	झाड़-फूल बूटी	१६, १७, २३	४९,६४,१३०
गेंदा बूटी	१८	८९	सूरज मुखी बूटी	२७	८५
सिरों बूटा	१६	५२	दो फूल बूटी	२२	१२१०
केड़ बूटी	१३	१०	हंसुआ बूटी	१६	५०
चौबूंदी बूटी	१७	६७	पंचडोढ़ी बूटी	१८	८२
रेवड़ी बूटी	१६	४७	साकड़ी की बेल	२१	११५
खरबूजा बूटी	१८	७२	बेलपत्र की बेल	२१	११३
लाडू बूटी	१३	१९	नीमपत्ती की बेल	२०	१०१
बेवड़ी बूटी	१८	७१	अंगूर की बेल	२०	१०५
माखी बूटी	१३	५	कमल फूल की बेल	२२	११८
कमल बूटी	१, २५	७, १६८	सुग्गा बेल	२०	१०७
पतासी बूटी	२५	१६५	कली का कंगूरा	२१	११६
गुलाब बूटी	२३	१३८	बेल पत्र का कंगूरा	२१	१०९
दाख बूटी	१३	२०	सुग्गा का कंगूरा	२६	१७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुस्तक-सूची

अग्रवाल, वासुदेव शरण — हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, विहार राष्ट्र भाषा परिषद्, १९५३

— पाणिनि कालीन भारतवर्ष, बनारस, १९६९

— रेफरेंसेज़ टू टेक्सटाइल्स इन बाण्स हर्ष चरित, जर्नल ऑफ इण्डियन टेक्सटाइल हिस्टरी, केलिको म्युज़ियम, अहमदाबाद भाग ४, १९५९

अतिया बेगम — दि एन्शेन्ट आर्ट ऑफ पेन्टिंग, डाइंग एण्ड प्रिन्टिंग, बम्बई, १९२६

अबुल् फज़्ल — आईन-ए-अकबरी, अनुवादक : ब्लॉकमेन

अहिवासी, जगन्नाथ मु० (संशोधक) — कीर्तन संग्रह, श्रीनारायण और जेठानंद आसनमल पुष्टी-मार्गीय ग्रंथमाला ८, बम्बई, १९५४

अहिवासी, देवकी — उत्तर भारत के परम्परागत लोकगीतों में वस्त्र वैभव "आज" साप्ताहिक विशेषांक, १६ जुलाई १९७२

— भारत कला भवन में संग्रहीत केसर से चित्रित, एक साड़ी, छवि : भारत कला भवन का स्वर्ण जयन्ती ग्रंथ, १९७१

इर्विन, जॉन — काश्मीर शाल : ओरिजिन एण्ड टेकनिक, मार्ग, भाग ८, सं० २, मार्च १९५५

— शॉल्स : ए स्टडी इन इन्डोयूरोपीयन इन्फ्लुएंसेज़, लंदन १९५५

— इन्डियन टेक्स्टाइल ट्रेड इन दि सेवेन्टान्थ सेंचुरी : वेस्टर्न इन्डिया, जर्नल ऑफ इण्डियन टेक्स्टाइल हिस्टरी, भाग, १ १९५५

इर्विन, जॉन तथा हॉल, मार्गरेट — हिस्टोरिकल टेक्स्टाइल्स ऑफ इन्डिया ऐट केलिको म्युज़ियम, भाग १ : इन्डियन प्रिंटेड फेब्रिक्स, बम्बई, १९७१

उपाध्याय, भगवत शरण — कालिदास का भारत, भाग १, बनारस, १९५४

कार्डिंगटन, के० डी० बी० — दि कलचर ऑफ मिडिवल इण्डिया ऐज़् इलस्ट्रेटेड बाय दि अजंता फ्रेस्कोज़्, इन्डियन ऐक्टिक्वारी, भाग ५९, १९३०

कापडिया, इन्दिरा हीरालाल — प्राचीन आने अर्वाचीन समयनी स्त्रिओनो पहिरवेश (गुजराती), सूरत, १९३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किपलिंग, जे० एन — दि पंजाब कोर्ट, कालोनियल प्रिंट्स, जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट एंड इंडस्ट्री, भाग १, सं० १४, १८८६

— स्टेम्पिंग एन्ड डाइंग इंडस्ट्री ऑफ पंजाब, जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट एंड इंडस्ट्री, भाग १, सं० २३, १८८७

कैन, डब्लू० एस० — पिक्चरस्क इन्डिया : ए हडबुक फॉर यूरोपीयन ट्रैवलर्स लंदन, १८९८

गहलोत, पूर्णिमा — राजस्थानी लोकगीत, जयपुर, १९७१

गुप्ते, बी०ए० — दि बरोडा कोर्ट, जर्नल ऑफ इन्डियन आर्ट एंड इंडस्ट्री, भाग १, सं० १६, १८८६

ग्लेजियर, रिचर्ड — हिस्टोरिकल टेक्स्टाइल फेब्रिक्स, लंदन, १९२३

गोपाल, लल्लनजी — इकनोमिक लाइफ ऑफ नार्दन इंन्डिया, बनारस, १९६५

जयकर, पुपुल— — कॉटन प्रिंट्स ऑफ गुजरात एन्ड काठियावाड, मार्ग, भाग ४, सं० १९५१

— इन्डियन प्रिंटेड टेक्स्टाइल्स (मोनोग्राफ), ऑल इन्डिया हेंडिक्राफ्ट बोर्ड

जायसी, मलिक मुहम्मद — पद्मावत, डॉ० वा० श० अग्रवाल द्वारा संपादित, झांसी १९५५

जान्स, ग्रावेन — दि ग्रामर ऑफ ग्रार्नमेंटेशन, लन्दन, १९१०

जैन, धीरजलाल बंसीधर — भारतीय रंग भंडार, ग्वालियर

डिमान्ड, एम० एस० — ए हेन्डबुक ऑफ मुहम्मडन ग्रार्ट, न्यूयार्क, १९४७

त्रिपाठी, रामनरेश — काव्य कौमुदी, भाग १, प्रयाग १९२९

देसाई, इच्छाराम सूर्यराम (संपादक) — बृहत् काव्य दोहान, (गुजराती), भाग १, बम्बई १९२५

धर्मरक्षित, भिक्षु (अनुवादक) — महापरिनिब्बान सुत्त, बनारस

नकवी, हमीदा खातुन — डाइंग ऑफ कॉटन गुड्स इन दि मुगल हिन्दुस्तान, जर्नल ऑफ इन्डियन टेक्स्टाइल हिस्टरी, भाग ७, १९६७

नारीगरा, महावजी भाई साजन भाई — रंगवानी कला (गुजराती)

नेविल, एच० ग्रार — डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ यू० पी०, आगरा एण्ड अवध, फतेहपुर, १९०६

परब, का० पा० तथा दुर्गाप्रसाद (संम्पादक) — समय मातृका, १८८८

परमार, श्याम — भारतीय लोकगीतों में रंग वैचित्र्य, कल्पना, वर्ष ५, अंक ८, १९५४

— पृथ्वीचन्द्र चरित, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, बड़ौदा, १९२०

फास्टर (संपादक) — लेटर्स रिसीवड बाय ईस्ट इंडिया कम्पनी फ्रॉम इट्स सर्वेंट्स इन दि ईस्ट, भाग १–६, लन्दन, १८७६ से १९०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वसु, बी० डी० — दि रुइन ऑफ इंडियन ट्रेड एंड इंडस्ट्रीज, तृतीय संस्करण कलकत्ता, १९३५

फिस्टर, आर० — दि इन्डियन आर्ट ऑफ केलिको प्रिंटिंग इन दि मिडिल एजेज़, इंडियन आर्ट एन्ड लेटर्स, भाग १३, सं० १, १९३९

बर्डवुड, जार्ज सी० एम० — दि इंडस्ट्रियल आर्ट्स ऑफ इंडिया, १८८०

बनर्जी, एन० एन० — डाइज़ एन्ड डाइंग इन बेंगाल (मोनोग्राफ़), कलकत्ता, १८९६

बस्टोनोबी, जे० एच० — प्रिंसिपल्स ऑफ कलर एंड कलर मिक्सिग, न्यूयार्क, १९४७

बेकर, जी० पी० — केलिको पेंटिंग एन्ड प्रिंटिंग इन दि ईस्ट इंडीज़ इन दि सेवेंटीन्थ एन्ड एटीन्थ सेंचुरीज़, लंदन १९२१

मार्शल जॉन — मोहनजोदाड़ो एंड इंडस वेली सिविलाइजेशन, भाग १

मित्तल, जगदीश — हिन्दी में रंगों की नामावली, कल्पना, हैदराबाद, अप्रैल १९५३

मित्तल, जगदीश और कमला — भारतीय कसीदाकारी (देखिये डां० वा० श० अग्रवाल की लिखी भूमिका), हैदराबाद, १९५४

मिश्रा, ललिता — सांगानेर प्रिंटिंग, मार्ग, भाग १८, सं० १, १९६४

मुखर्जी, टी० एन० — हैन्डबुक ऑफ इन्डियन प्रोडक्ट्स, कलकत्ता, १८८३

— आर्ट मैन्युफैक्चर्स ऑफ इन्डिया, कलकत्ता, १८८८

मेयर्ज और पाल — डिक्शनरी ऑफ कलर, १९३०

मोतीचन्द्र — जैन मिनिएचेर पेंटिंग्स ऑफ वेस्टर्न इन्डिया, अहमदाबाद, १९४८

— प्राचीन भारतीय वेश-भूषा, प्रयाग, १९५०

— इन्डियन कॉस्ट्यूम्स एन्ड टेक्सटाइल्स फ्रॉम एट्थट्ठ दि ट्वेल्फ्थ सेंचुरी, जर्नल ऑफ इंडियन टेक्सटाइल हिस्टरी, भाग ५, १९६०

— इंडियन कॉस्ट्यूम्स एन्ड टेक्सटाइल्स इन दि सलतनत पीरियड, जर्नल ऑफ इंडियन टेक्स्टाइल हिस्टरी, भाग ६, १९६२

याजदानी, जी० — अजंता (प्लेट्स) भाग, लंदन, १९३३

युसुफ अली — मोनोग्राफ ऑन सिल्क फैब्रिक्स ऑफ नार्थ वेस्टर्न प्रोविंसेज़ एन्ड अवध, इलाहाबाद, १९०६

रत्नमणिराव, भीमराव — गुजरात नु पाटनगर अहमदाबाद (गुजराती), अहमदाबाद, १९२९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रस सिन्धु — यमुना तरंगिणी, बनारस, १८८३

लेबीज, एलबर्ट बुएल — ब्लॉक प्रिंट्स फ्रॉम इन्डिया फॉर टेक्स्टाइल्स, शिकागो, १९२४

वॉटसन फॉर्बीज़ — दि टेक्स्टाइल मेन्युफेक्चर्स एन्ड कॉस्ट्युम्स ऑफ दि पीपुल ऑफ इंडिया, लंदन, १८६६

— इलस्ट्रेशन ऑफ टेक्स्टाइल मेन्युफेक्चर्स ऑफ इंडिया, लंदन, १८८१

— कलेक्शन ऑफ स्पेसिमेन्स ऑफ टेक्स्टाइल मेन्युफेक्चर्स ऑफ इंडिया, लंदन १८७३

वॉट जार्ज, — इंडियन आर्ट एट देहली : दि ऑफिसियल केटलॉग ऑफ दि देहली एक्जीबीशन १९०२–१९०३, कलकत्ता, १९०३

वाडेन पावेल, बी० एच० — हैन्डबुक ऑफ दि आर्ट मेन्युफेक्चर्स एण्ड आर्ट्स ऑफ पंजाब, भाग २, लाहौर, १८७२

वार्डले, टामस — जनरल ऑफ इंडियन आर्ट भाग १, सं० १५ (देखिये अलवर की रंगाई के नमूने)

विजय कृष्ण — फ्लावर्स इन इंडियन टेक्स्टाइल डिजाइन्स, जर्नल ऑफ इंडियन टेक्स्टाइल हिस्टरी, भाग ७, १९६७

शर्मा, हनुमान — राजपुताने की कला सरस्वती, भाग २६, अंक २, सं० ३, १९२५

सांडेसरा, भोगीलाल जे० — प्राचीन फागु संग्रह, बड़ौदा, १९५५

— वर्णक समुच्चय (दो भाग), बड़ौदा, १९५६

स्मिथ, ए० डी० हॉवेल — दि डाइड एन्ड प्रिंटेड कॉटन्स ऑफ इंडिया, इंडियन आर्ट एन्ड लेटर्स, भाग १४, सं० २, १९२०

सिलबर्ड, सी०ए० — ए मोनोग्राफ ऑन कॉटन फेब्रिक्स प्रोड्युस्ड इन दि नार्थ-वेस्टर्न प्रोविंसेज़ एन्ड अवध, इलाहाबाद, १८९८

— कॉटन फैब्रिक्स ऑफ दि नार्थ-वेस्टर्न प्रोविंसेज़ एन्ड अवध, जर्नल ऑफ इन्डियन आर्ट एंड इंडस्ट्री, १०, सं० ८२–१८९९

सोमेश्वर — अभिलषितार्थ चिन्तामणि, शामाशास्त्री द्वारा संपादित

हादी, सैयद मुहम्मद — ए मोनोग्राफ ऑन डाइज एन्ड डाइंग इन दि नार्थ-वेस्टर्न प्रोविंसज़ एन्ड अवध, इलाहाबाद, १९०६

हाले, डब्लू०एम० — सिल्क इन्डस्ट्री ऑफ पंजाब, जर्नल ऑफ इन्डियन आर्ट एंड इंडस्ट्री, भाग १०, सं० ८१, १८९९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैन्डले, टी० होल्वेन — दि आर्ट मेन्युफेक्चर्स ऑफ अजमेर, मेवाड़, जर्नल ऑफ इन्डियन आर्ट, भाग ३, सं० २७, १८८९

विविध

गुजरात राज्य कला प्रदर्शनी की डायरेक्टरी, सूरत, १९१७

टेक्स्टाइल डाइंग एन्ड हेन्डलूम प्रिंटिंग इन मध्यप्रदेश, सेंसस ऑफ इन्डिया, मोनोग्राफ सीरीज, भाग १, १९६१

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ यू०पी० भाग ३७, १९२२

डिस्ट्रिक्ट डिस्ट्रिक्ट गजेरियर ऑफ यू०पी०, भाग ४३

युनाइटेड प्रोविंसेज एक्जीबीशन, इलाहाबाद, १९१०-१९११, ऑफिशियल हैंडबुक, द्वितीय संस्करण

चकत्तावंश प्रकाश, सवाई माधोसिंह (१८ वीं शती) के काल में लिखा ब्रज भाषा का एक हस्तलिखित ग्रन्थ, भारत कला भवन, बनारस के संग्रह से

दि इन्डियन टेक्स्टाइल जर्नल, भाग १९, सं० ३४१, फरवरी १९१९

—॥ ० ॥—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुजराती छींटों में प्रयुक्त भांतें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

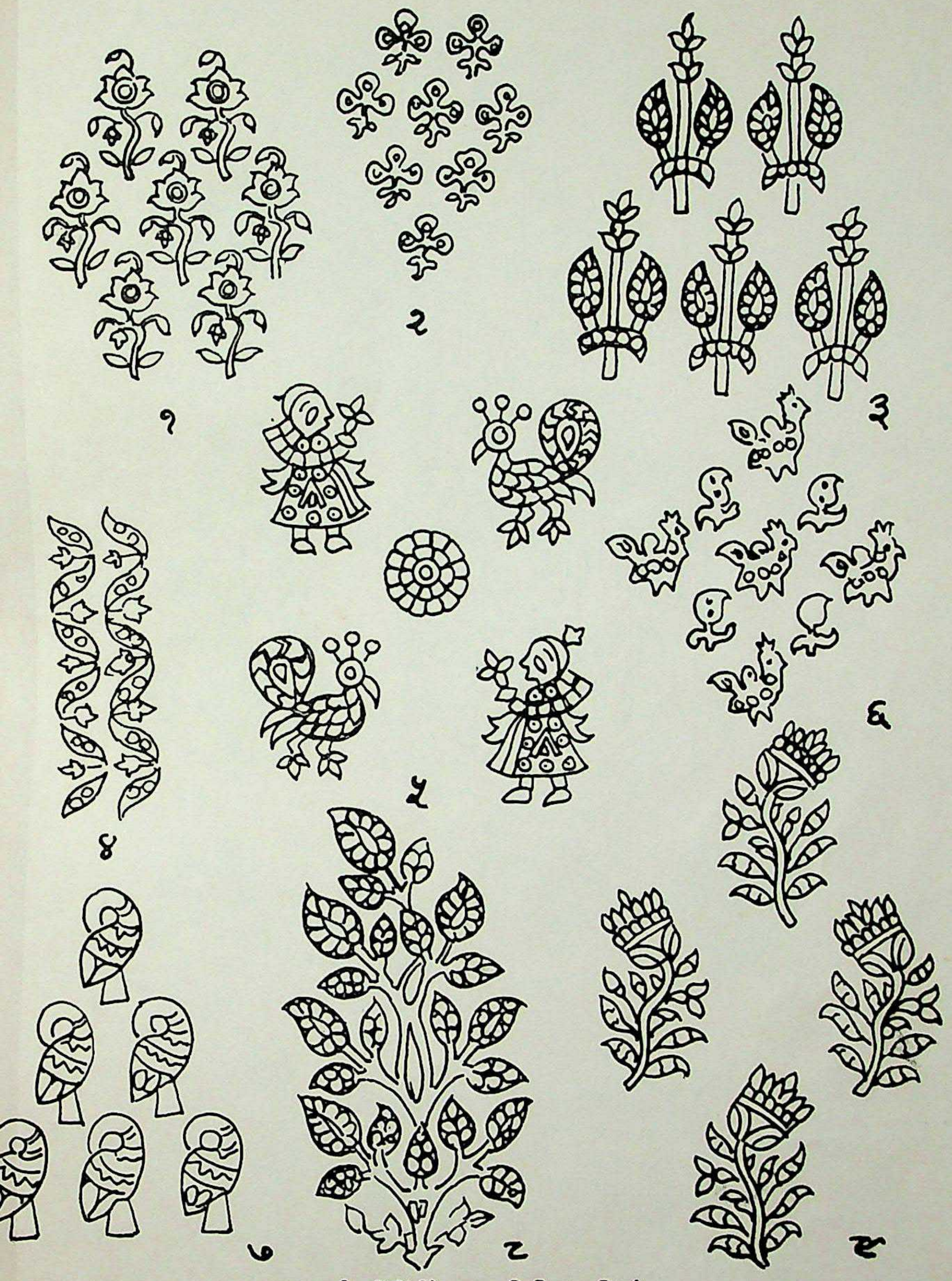

गुजराती छींटों में प्रयुक्त विविध बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

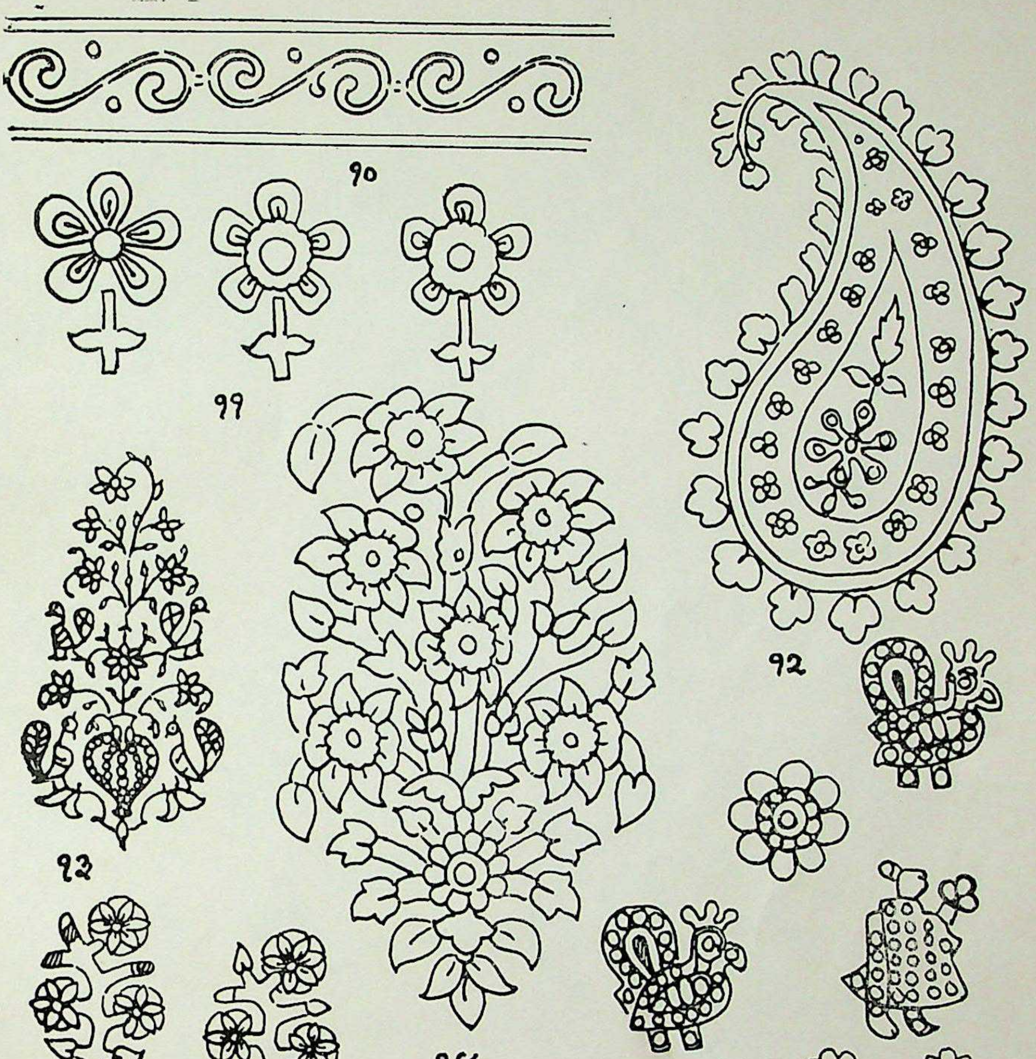

गुजरात की छपाई के विविध नमूने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

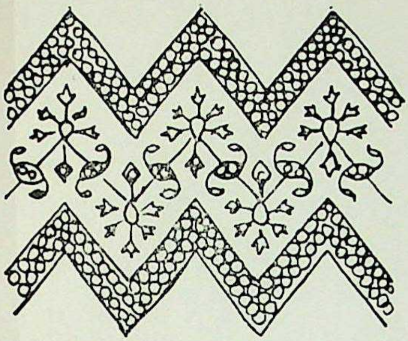

१९

२०

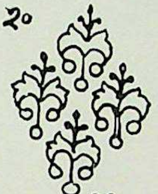

२१

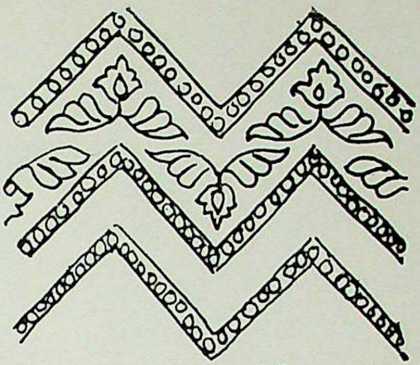

२२

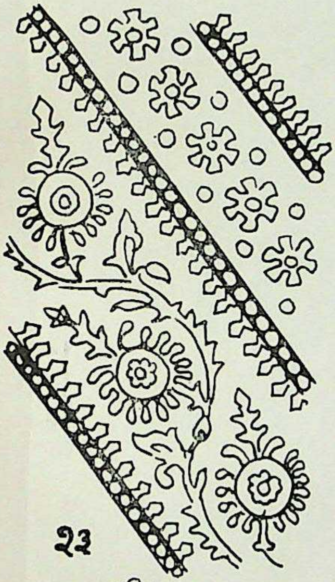

२३

२४

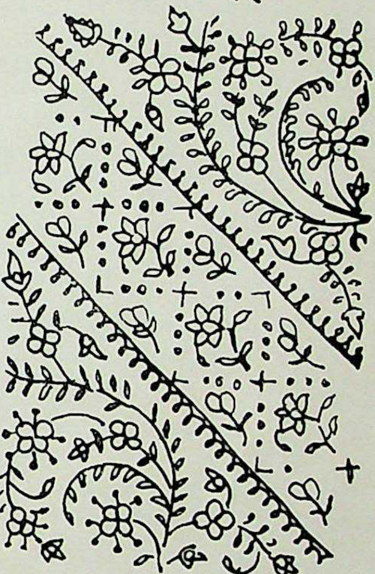

२५

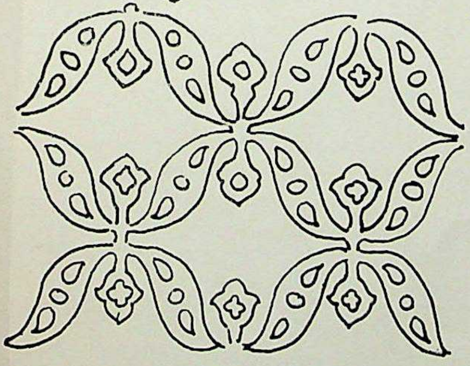

२६

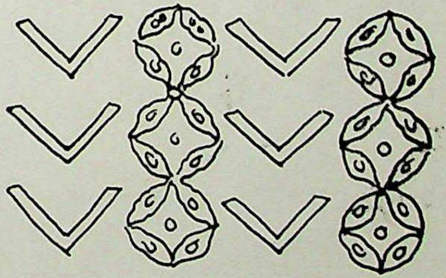

२७

गुजराती छपाई के विविध नमूने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

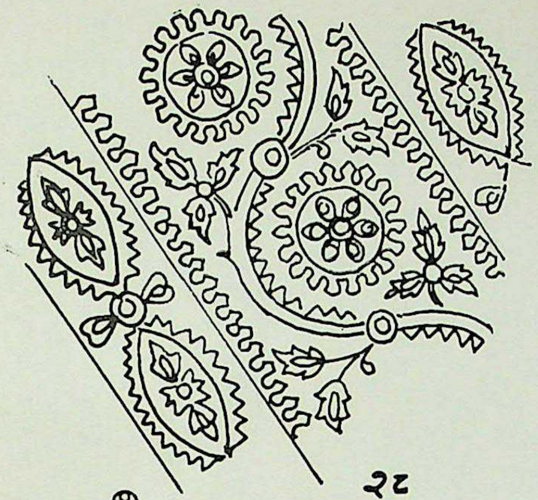

२८

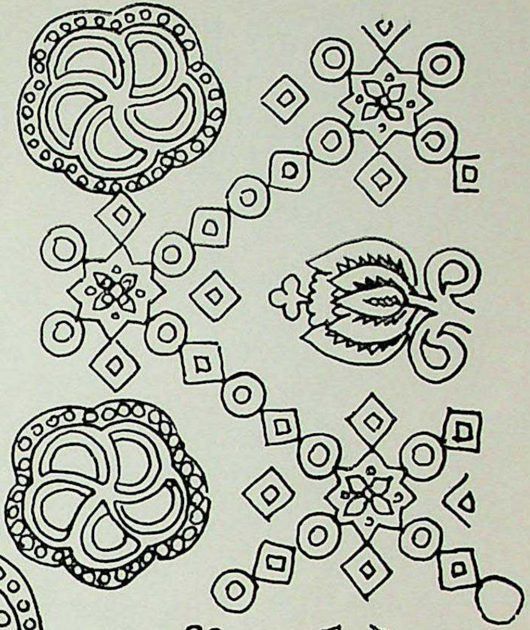

३२

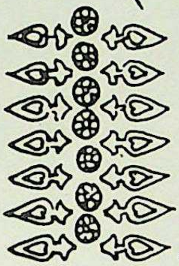

२९

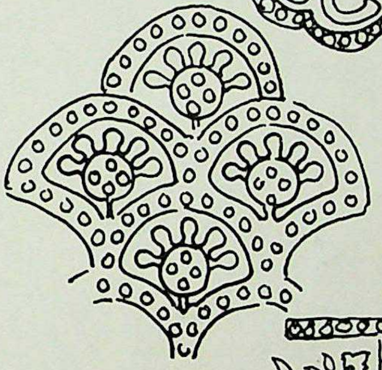

३१

३३

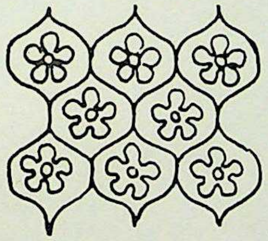

३०

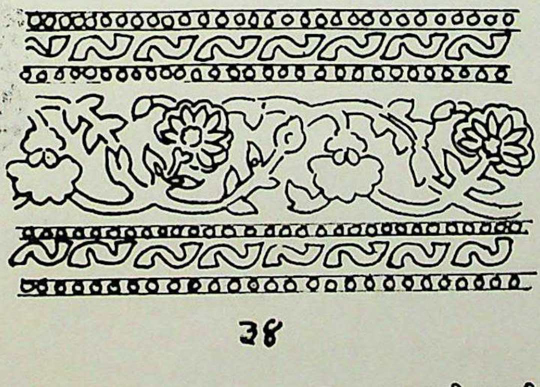

३४

३५

गुजराती छपाई के विविध नमूने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

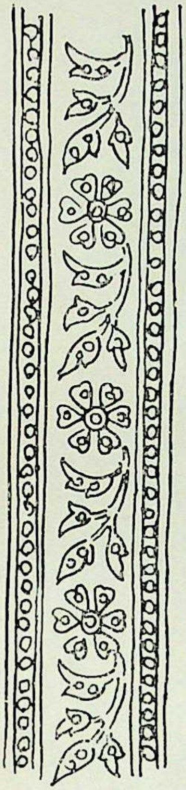

३६

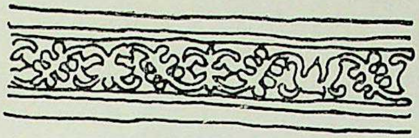

३७

३८

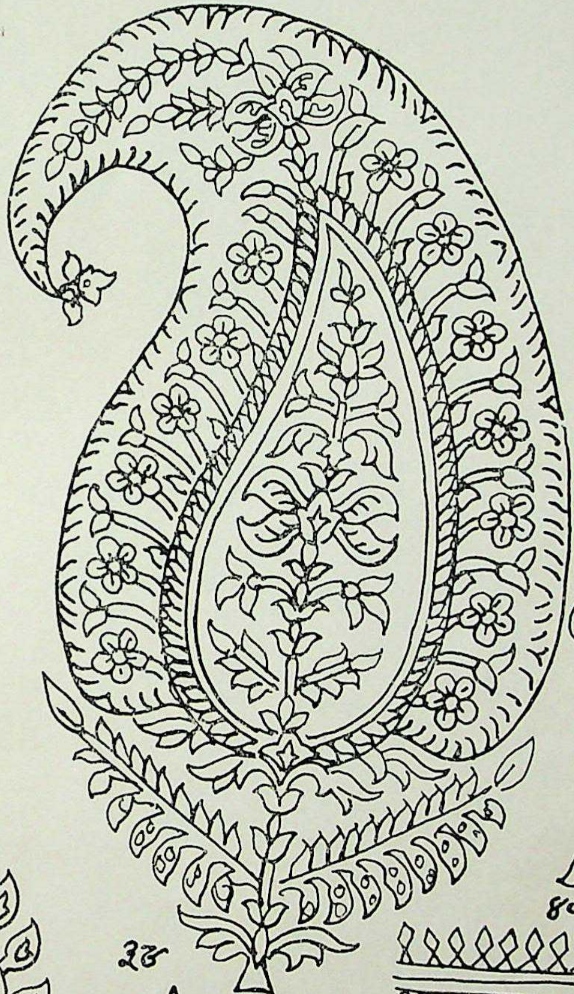

३९

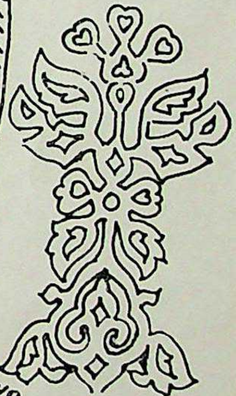

४०

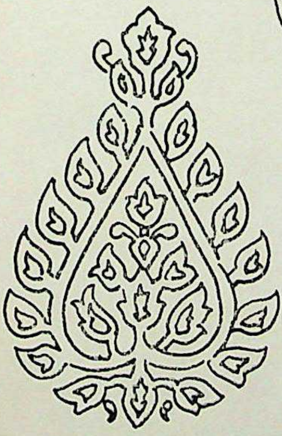

४१

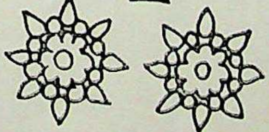

४२

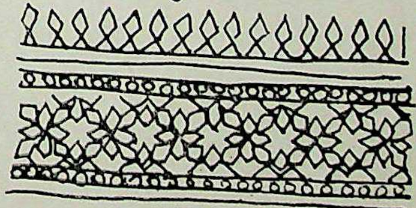

४३

गुजराती छायलों के आंचल में छापी जाने वाली भातें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

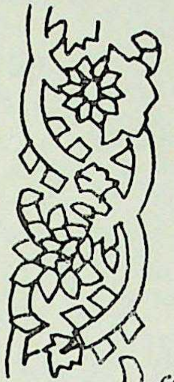

४४

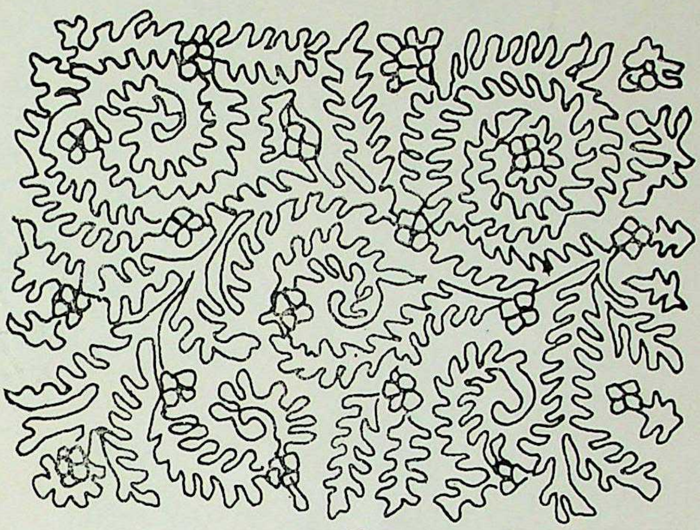

४५

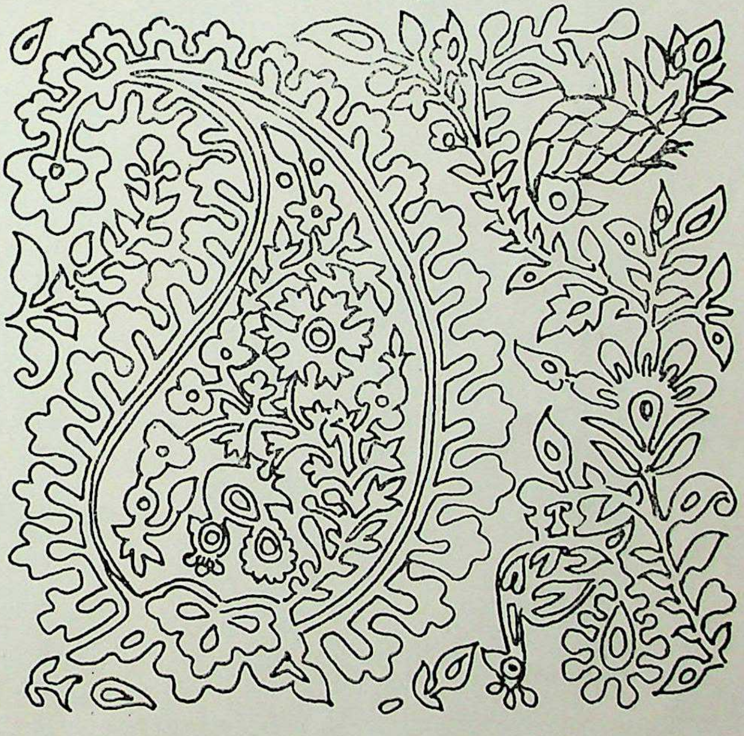

४६

४७

गुजराती छींटों में प्रयुक्त जाल और किनारे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

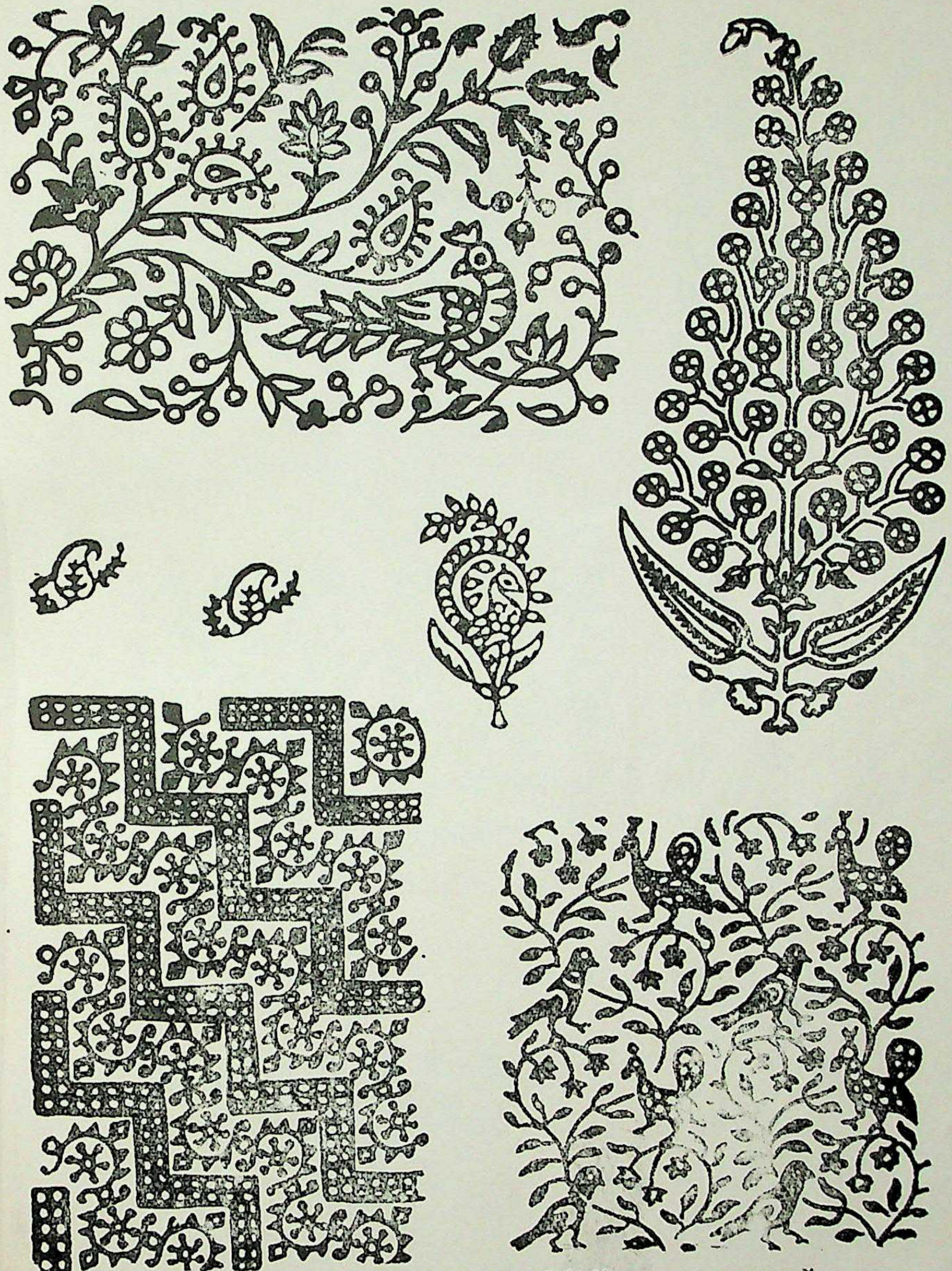

४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, गुजराती छींटों में प्रयुक्त जाल तथा बूटें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

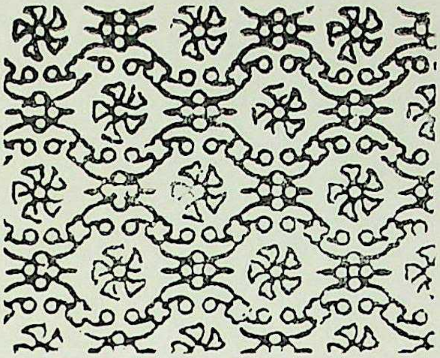
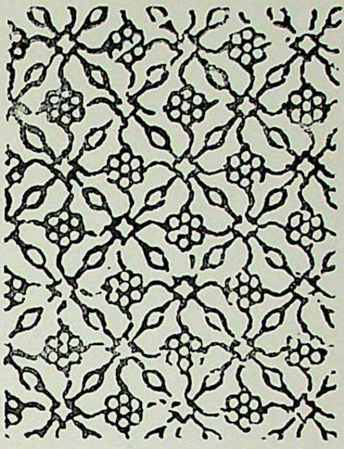

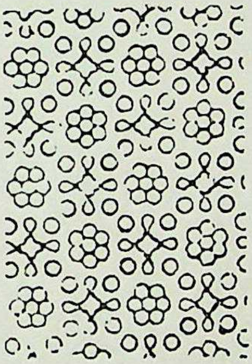
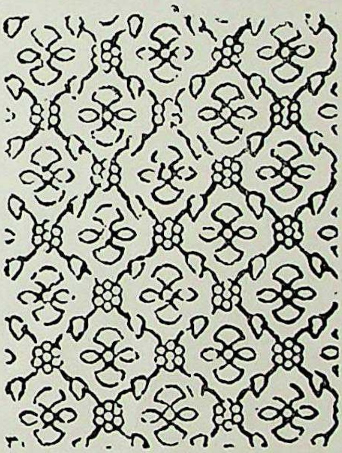
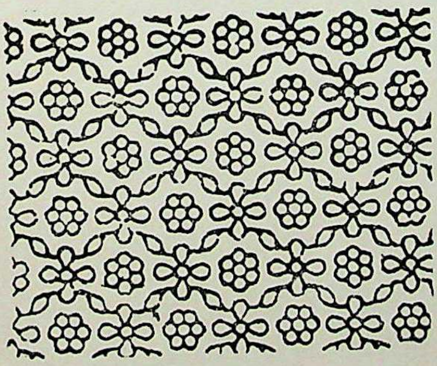
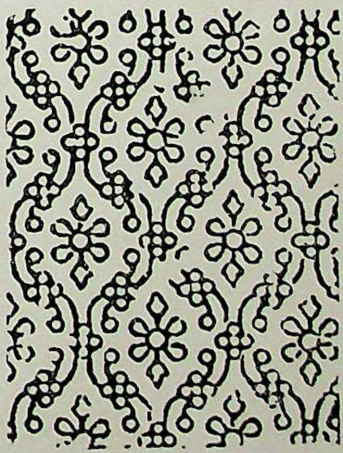

५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६० गुजरात की पुरानी छीटों में प्रयुक्त कुछ भांतें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

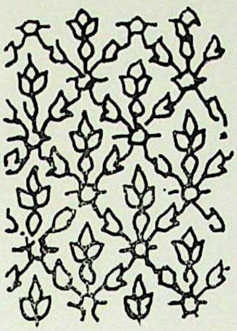

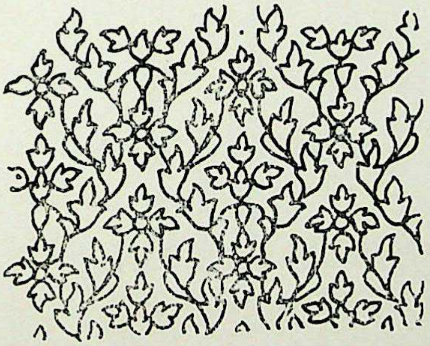

६१, ६२, ६३
गुजराती छींटों में प्रयुक्त जंगलों के विविध प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर प्रदेश की छींटों में प्रयुक्त भांतें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

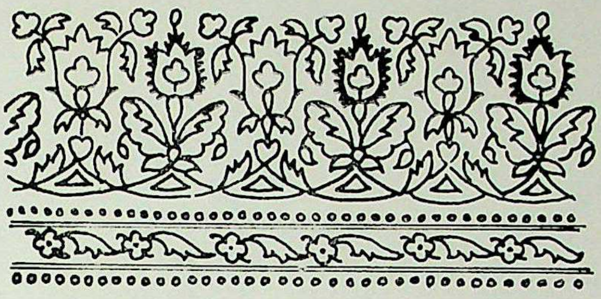

१, २ लखनऊ की छपाई के नमूने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

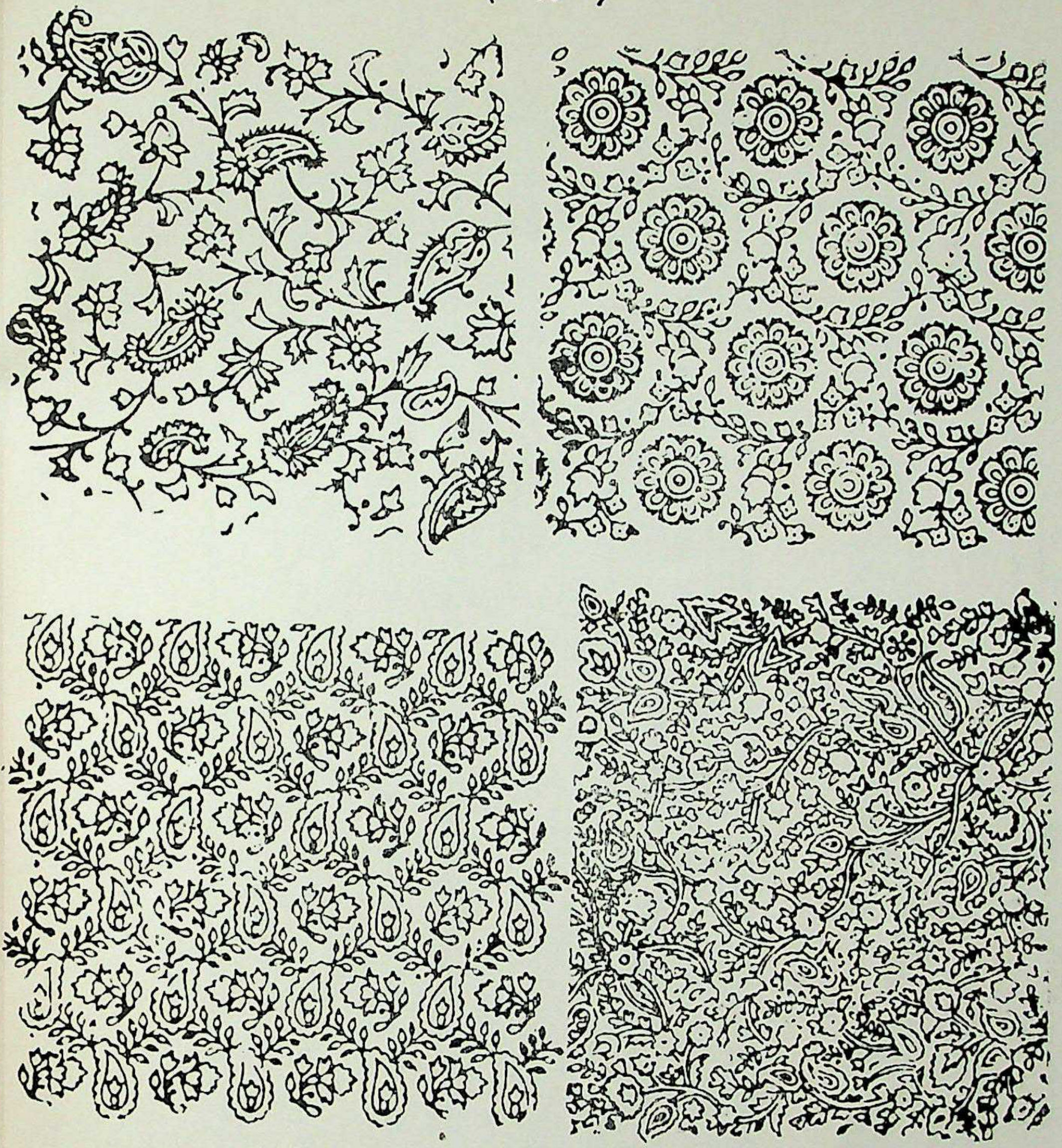

३, ४, ५, ६ फर्रुखाबादी छीटों में प्रयुक्त जाल और जंगलों के विविध प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

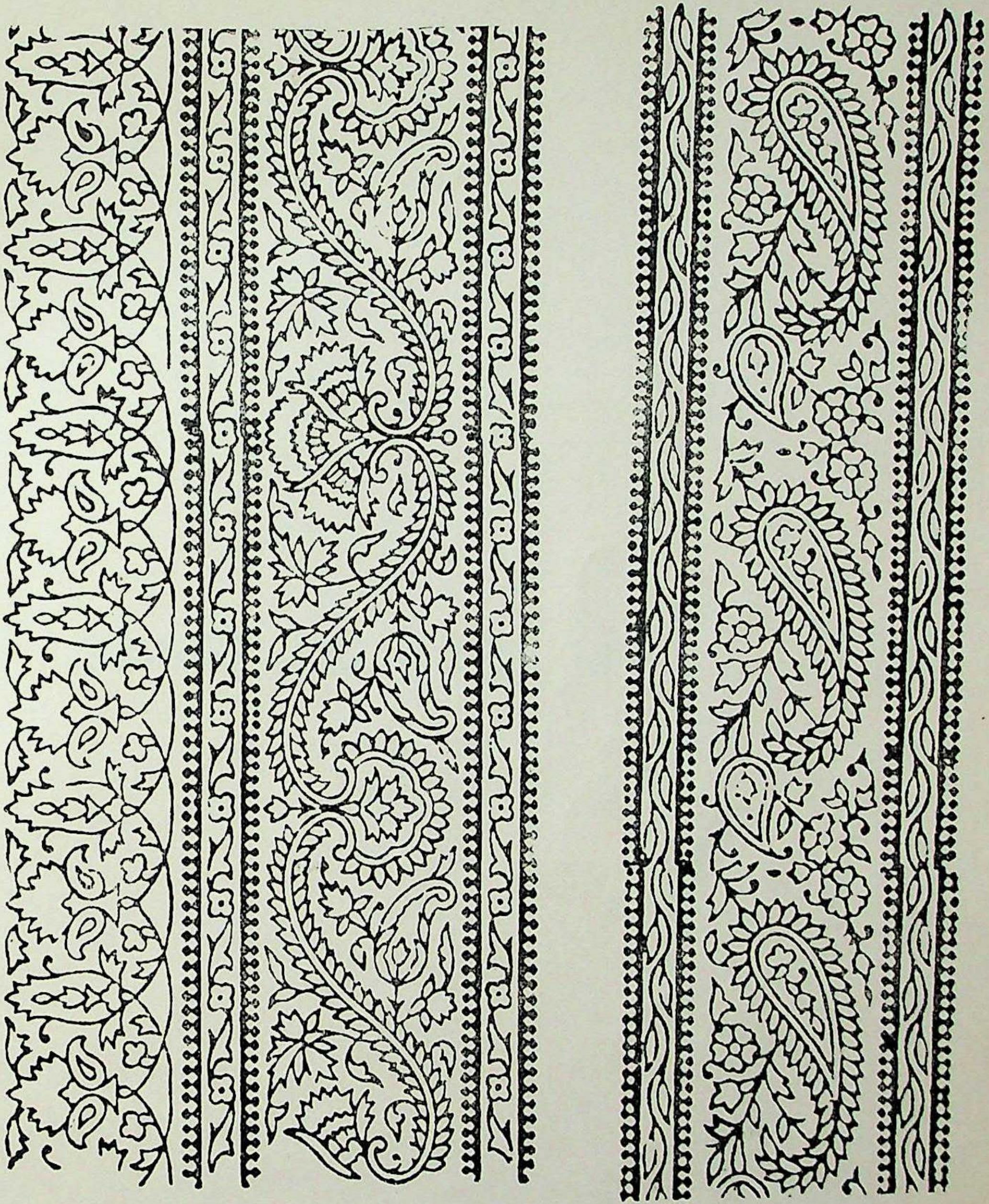

७, ८ फर्रूखाबादी छपाई में प्रयुक्त किनारे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजस्थानी छींटों में प्रयुक्त भांतें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

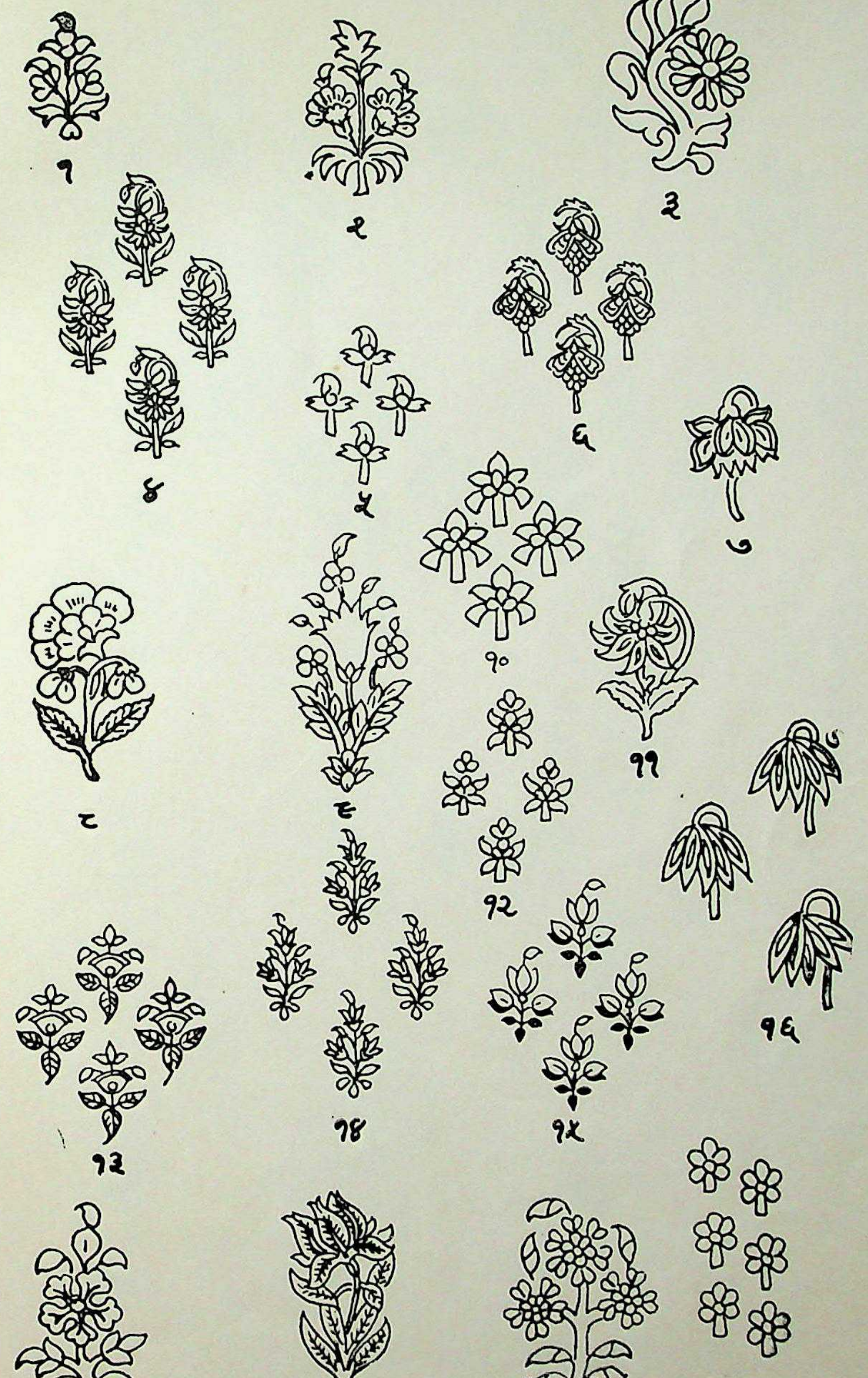

पुरानी सांगनेरी छींटों में प्रयुक्त विविध बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

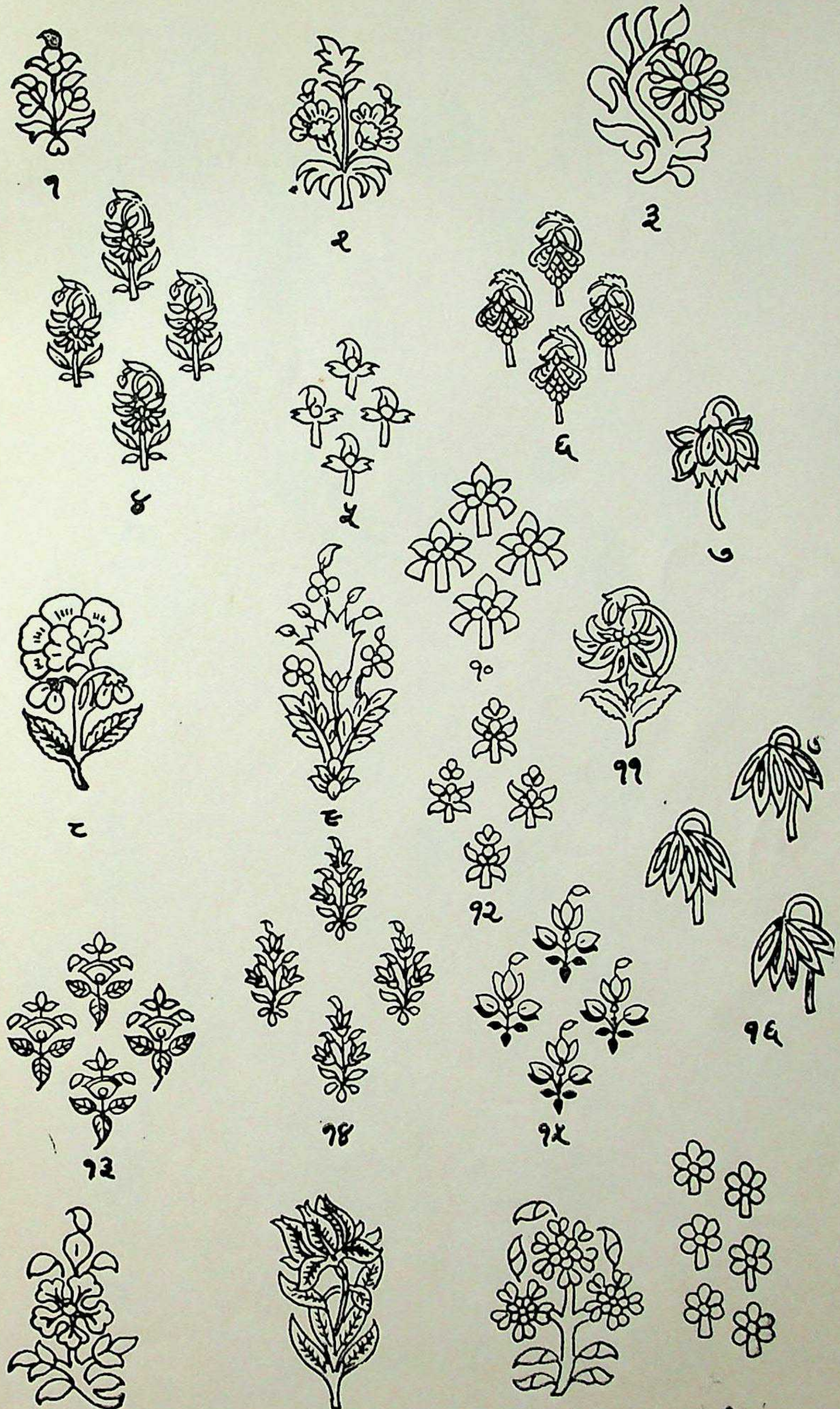

पुरानी सांगनेरी छींटों में प्रयुक्त विविध बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

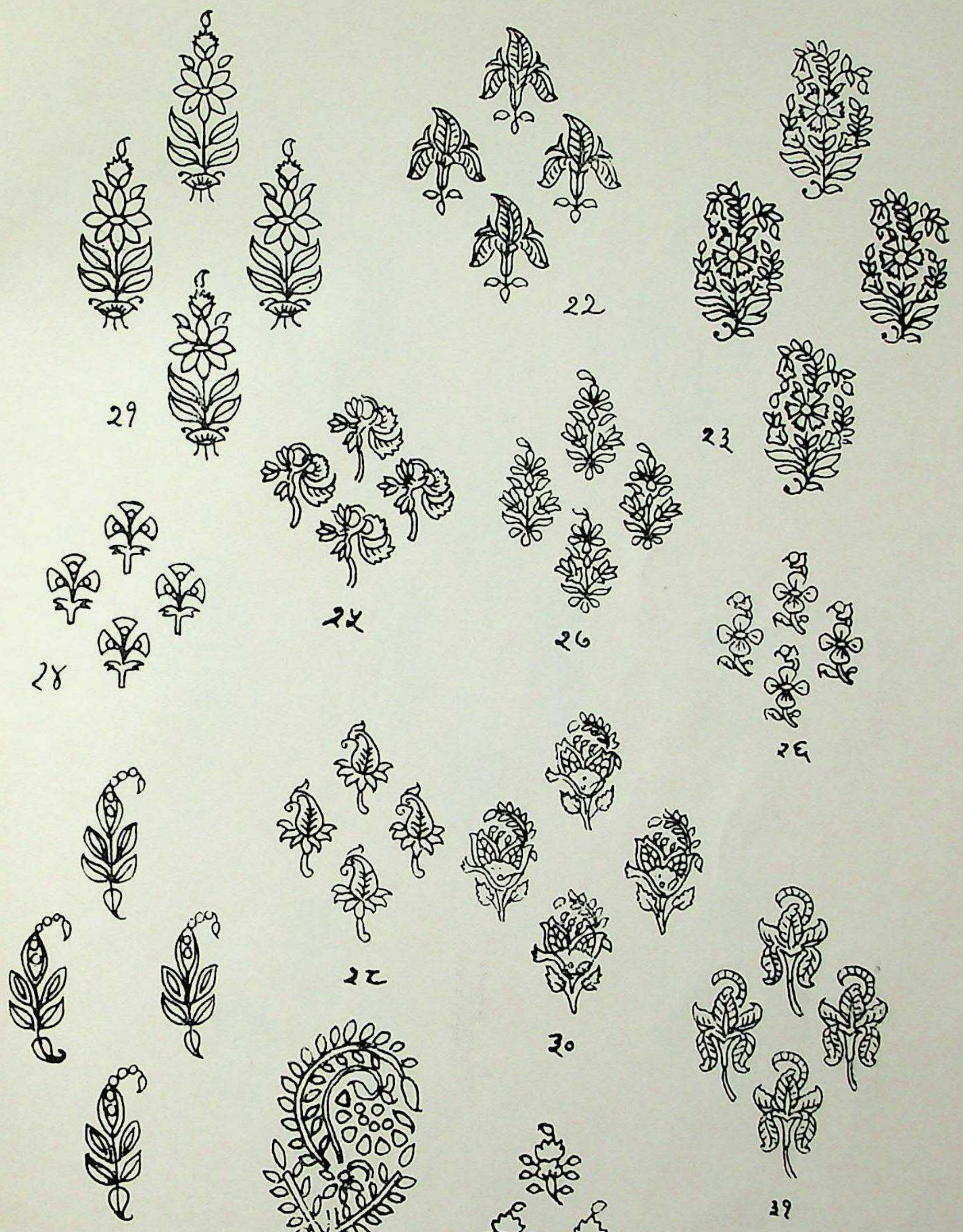

पुरानी सांगानेरी छींटों में प्रयुक्त विविध बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

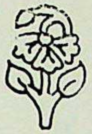
३२

३३

३४

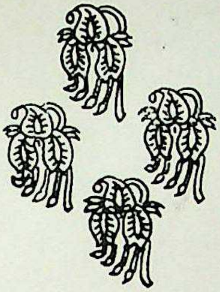
३५

३६

३७

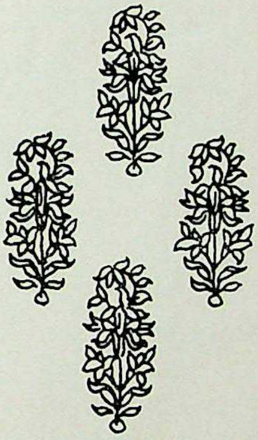
३८

३८

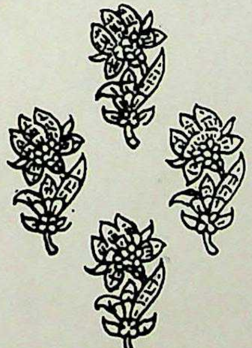
४०

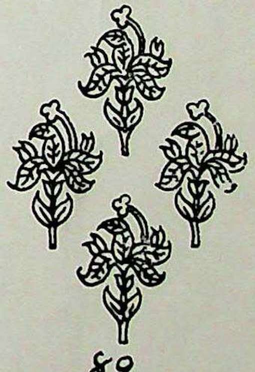
४१

४२

४३

४४

पुरानी सांगानेरी छींटों में प्रयुक्त विविध बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

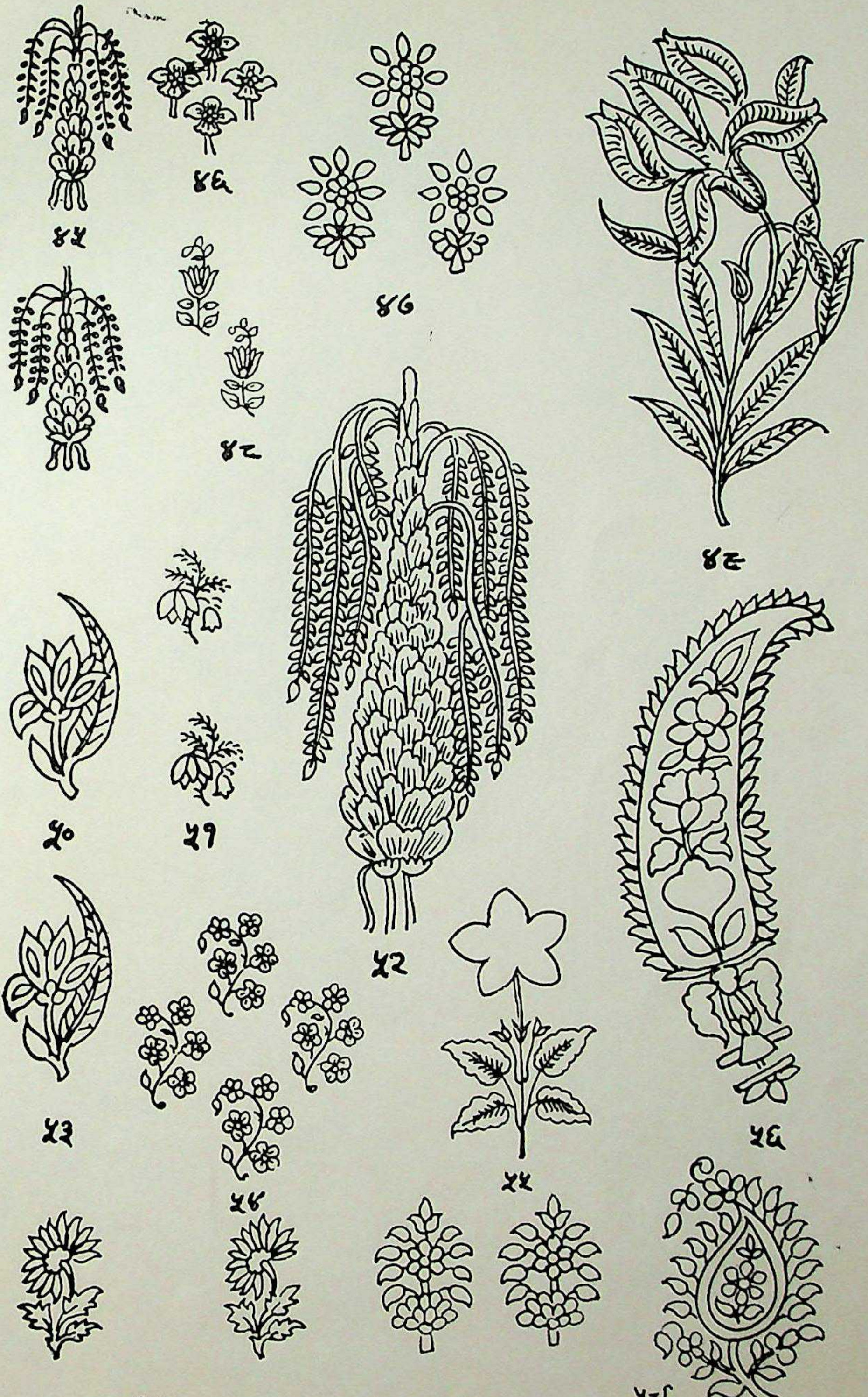

पुरानी सांगानेरी छींटों में प्रयुक्त विविध बूटे-बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६०

६१

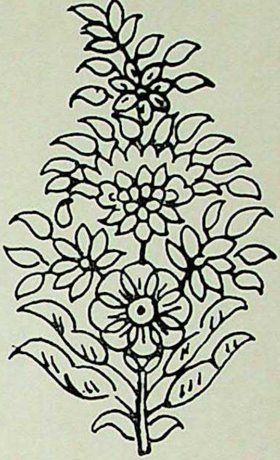

६२

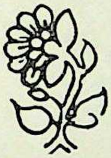

६३

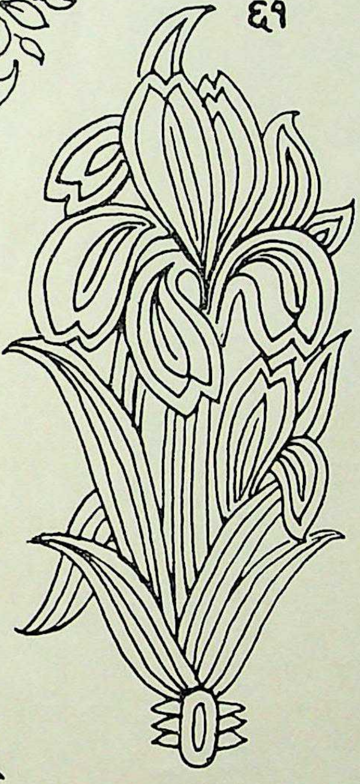

६४

६५

६६

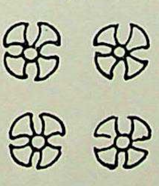

६७

६८

सांगानेरी बूटे-बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

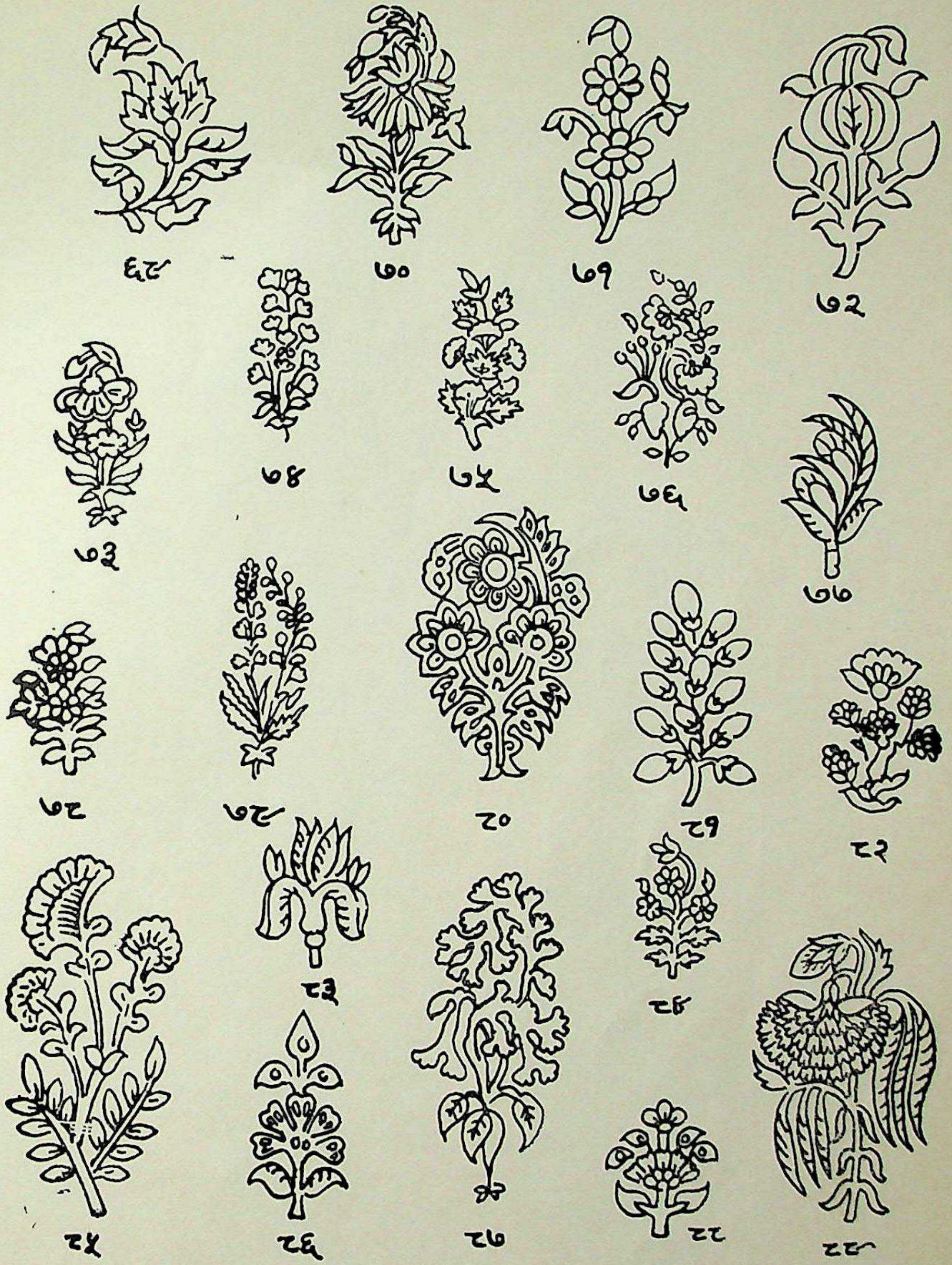

पुरानी सांगानेरी छींटों में प्रयुक्त विविध बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

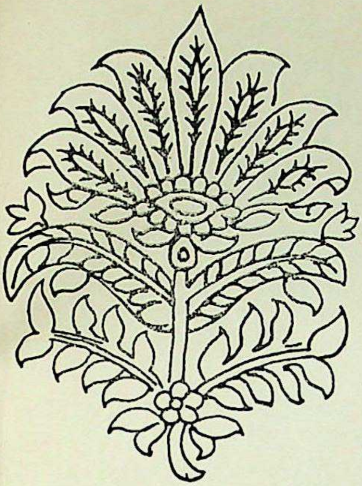

८०

८१

८२

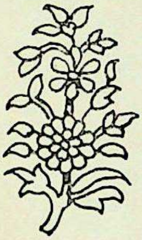

८३

८४

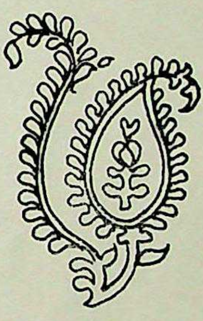

८५

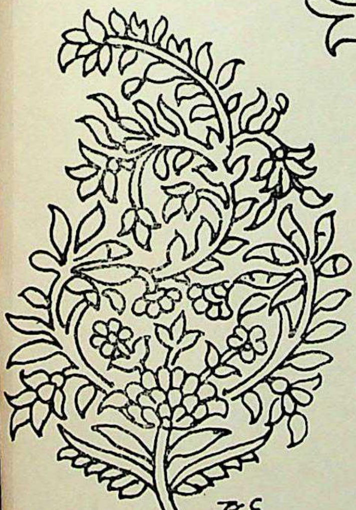

८६

८७

८८

सांगानेरी बूटे-बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९९

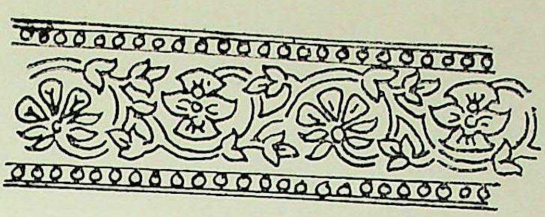

१००

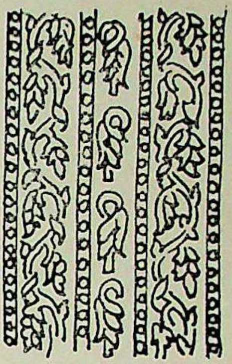

१०१

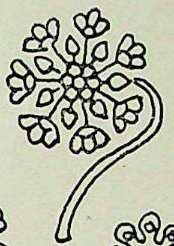

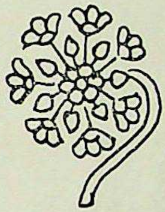

१०२

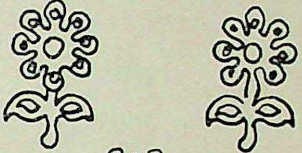

१०३

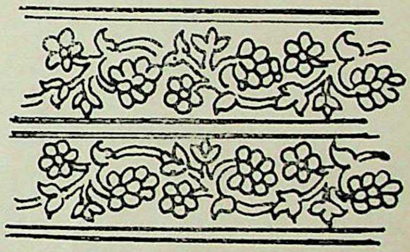

१०५

१०४

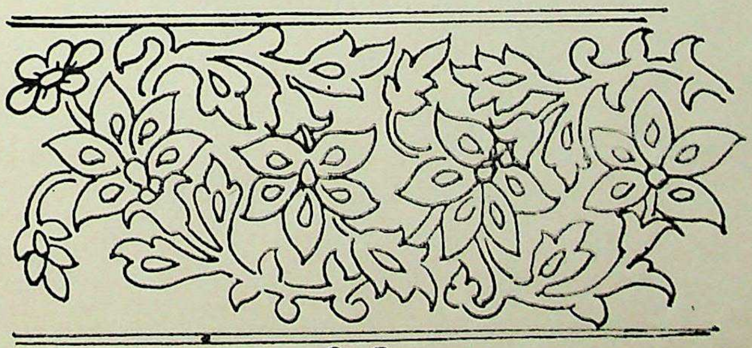

१०६

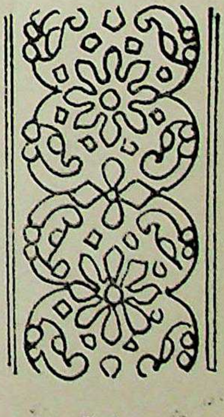

१०७

सांगानेरी साड़ियों के विविध किनारे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१०८

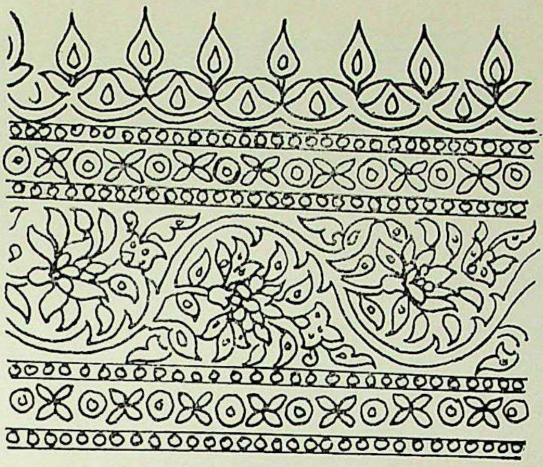

१०९

११०

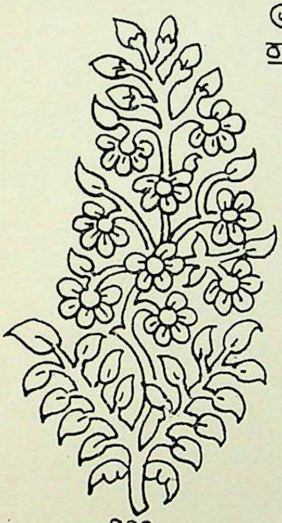

१११

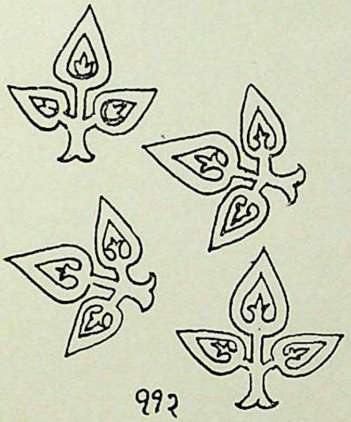

११२

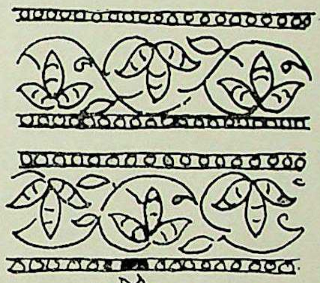

११३

११४

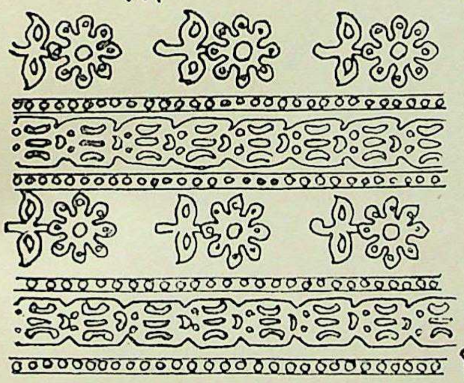

११५

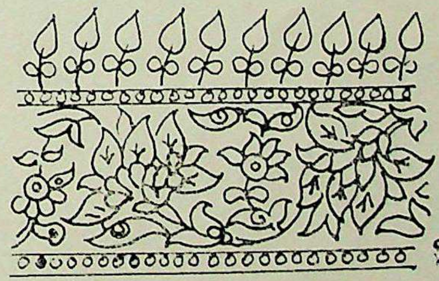

११६

सांगानेरी छींटों के किनारे तथा बूटे-बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

११७

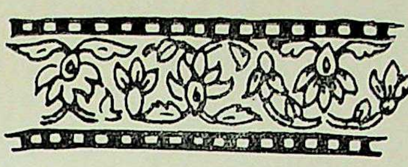

११८

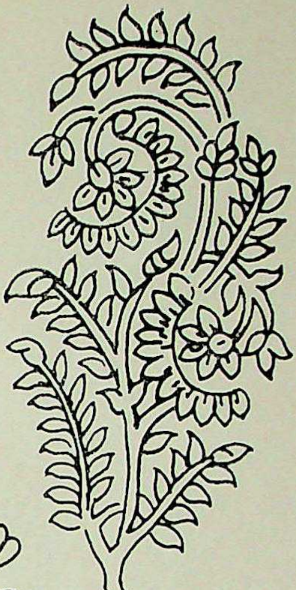

११९

१२०

१२१

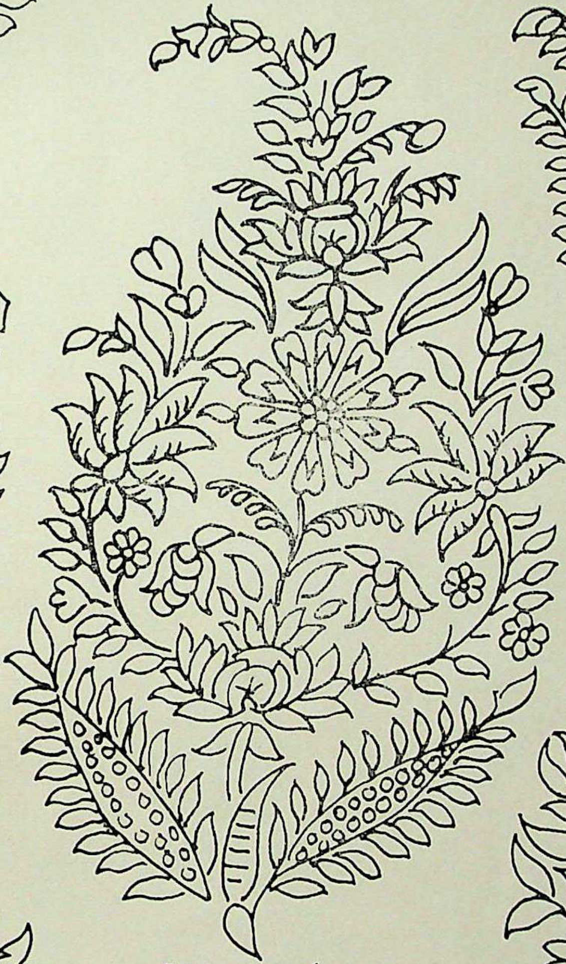

१२२

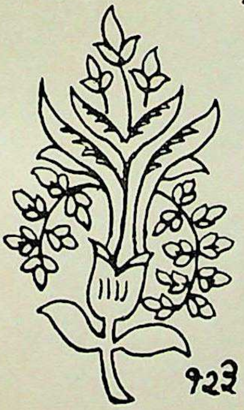

१२३

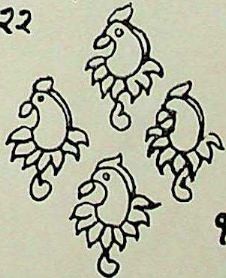

१२४

१२५

सांगानेरी बूटे-बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

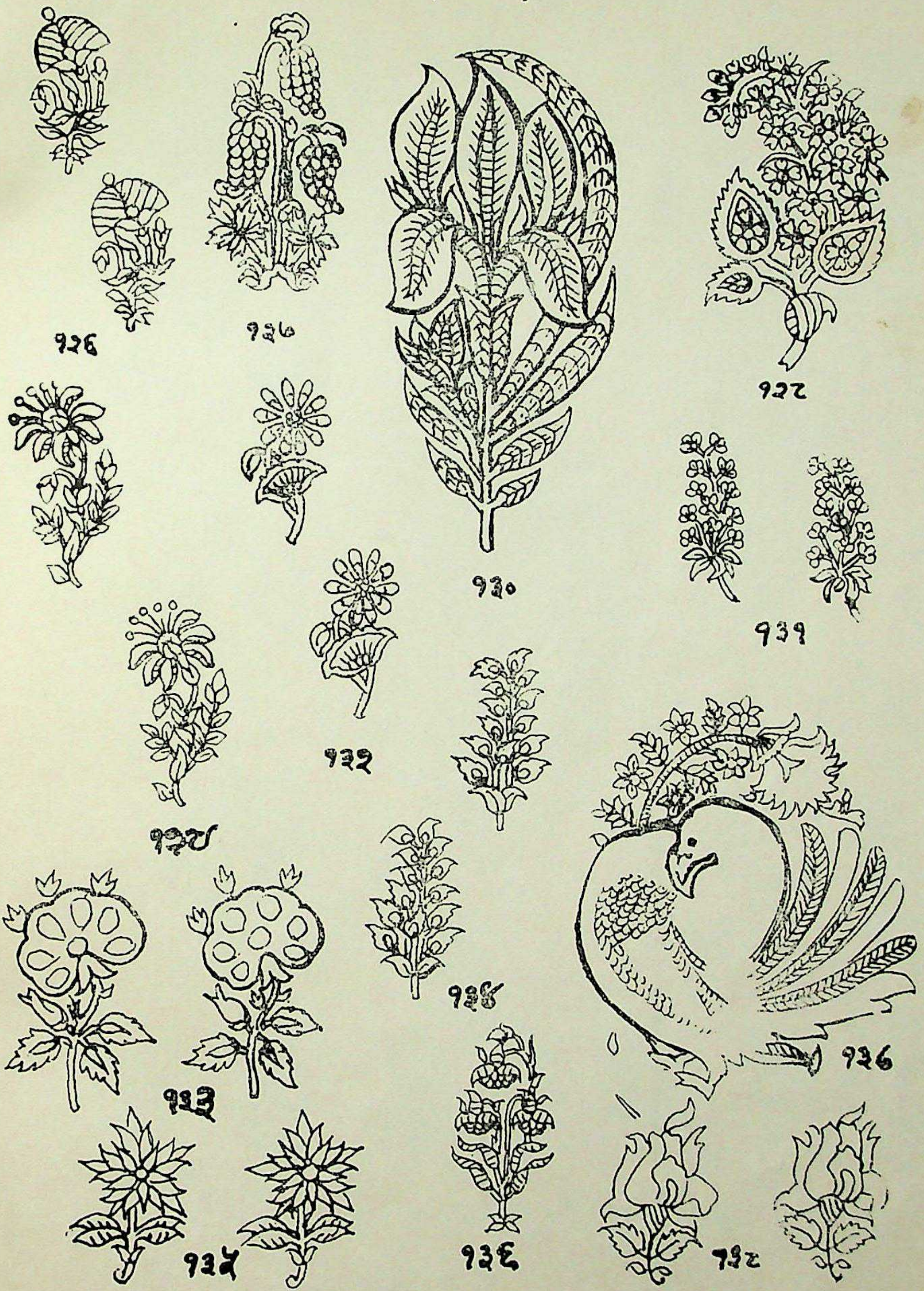

पुरानी सांगानेरी छीटों में प्रयुक्त बूटे-बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

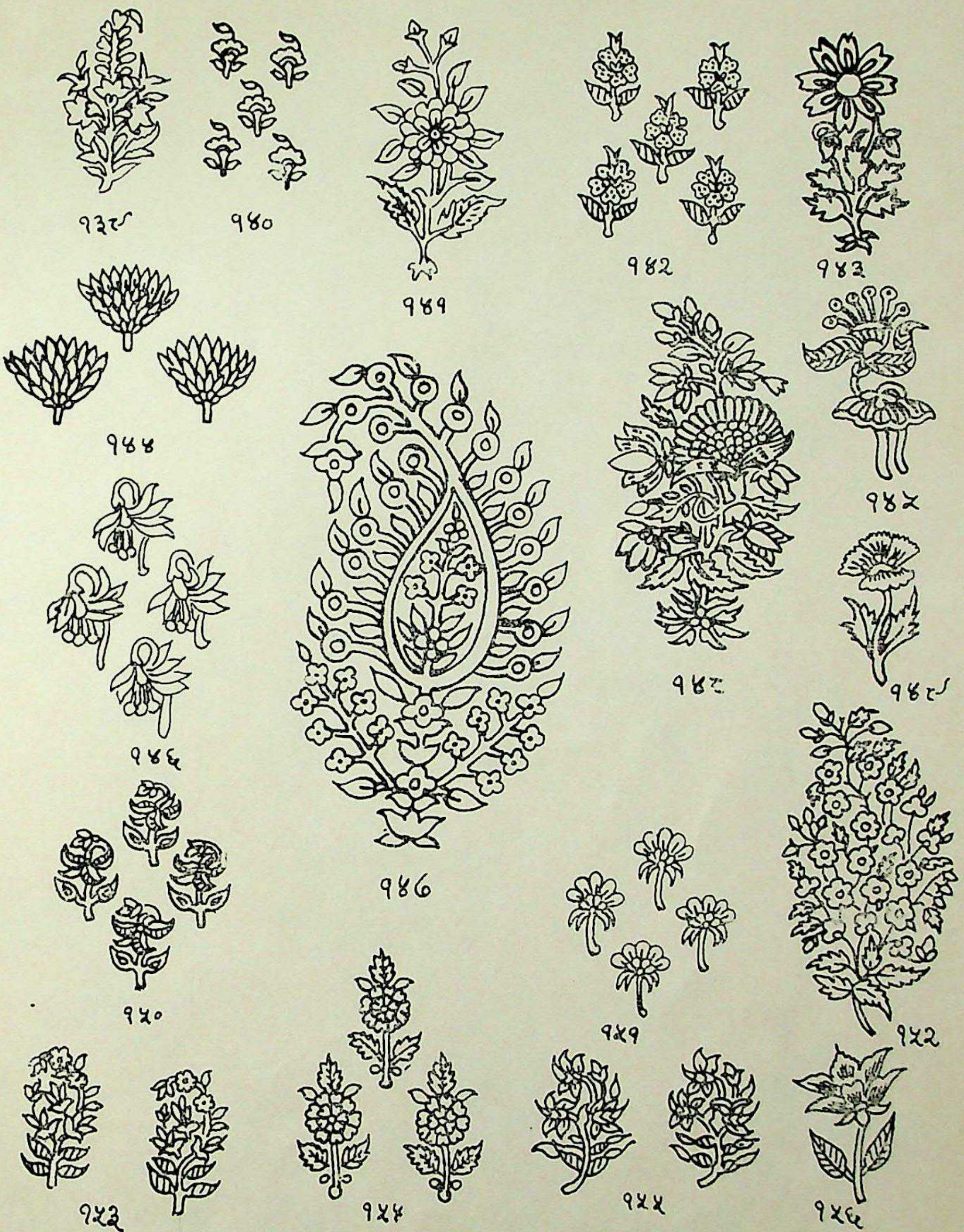

पुरानी सांगानेरी छीटों में प्रयुक्त बूटे-बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५७

१५८

१५९

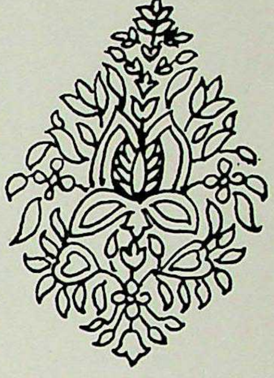

१६०

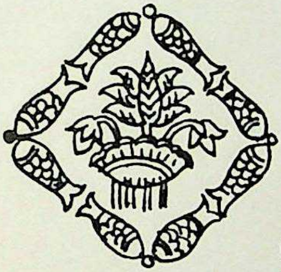

१६१

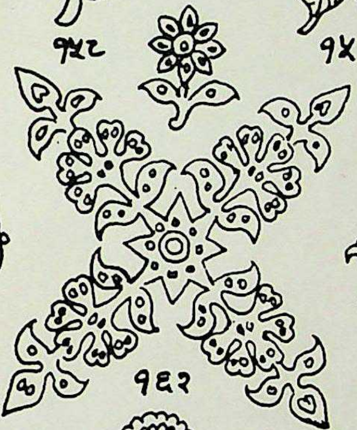

१६२

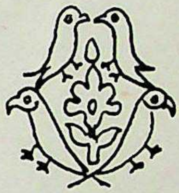

१६३

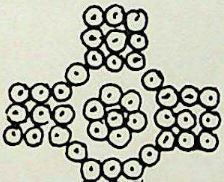

१६४

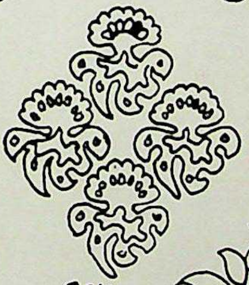

१६५

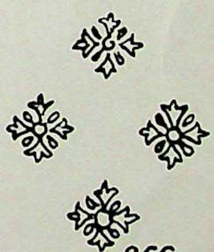

१६६

१६७

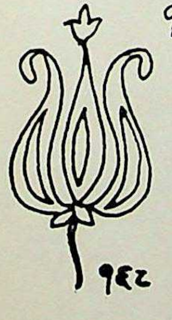

१६८

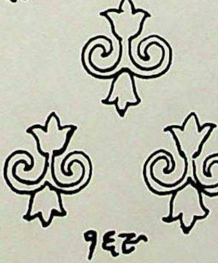

१६९

१७०

१७१

पुरानी सांगानेरी छीटों में प्रयुक्त बूटे-बूटियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

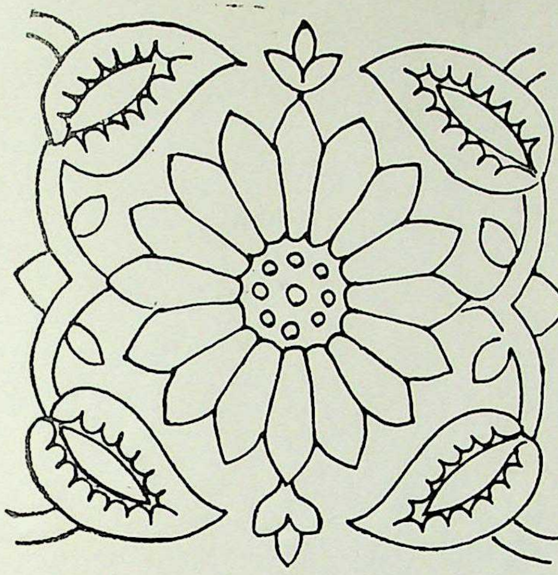

१७२

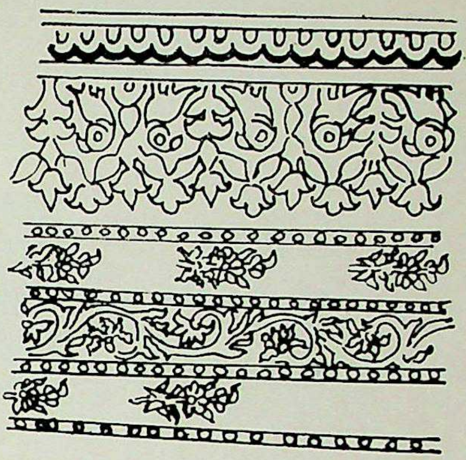

१७३

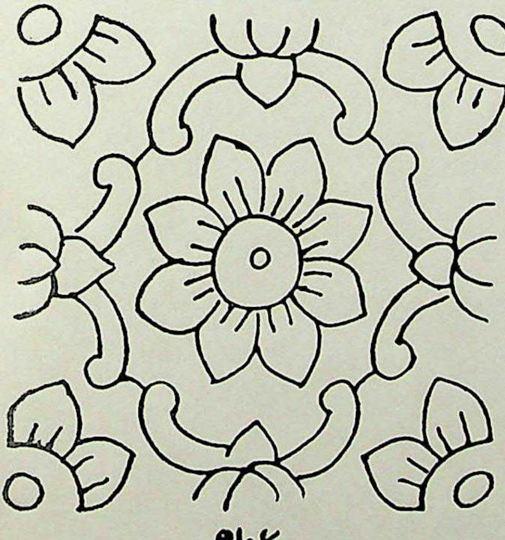

१७४

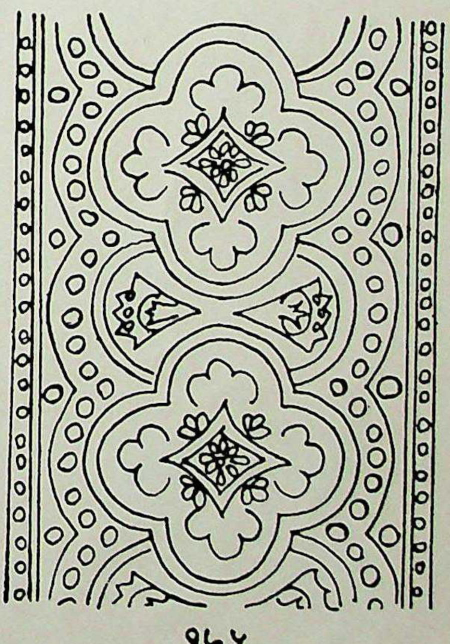

१७५

आधुनिक सांगानेरी छीटों के कुछ नमूने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

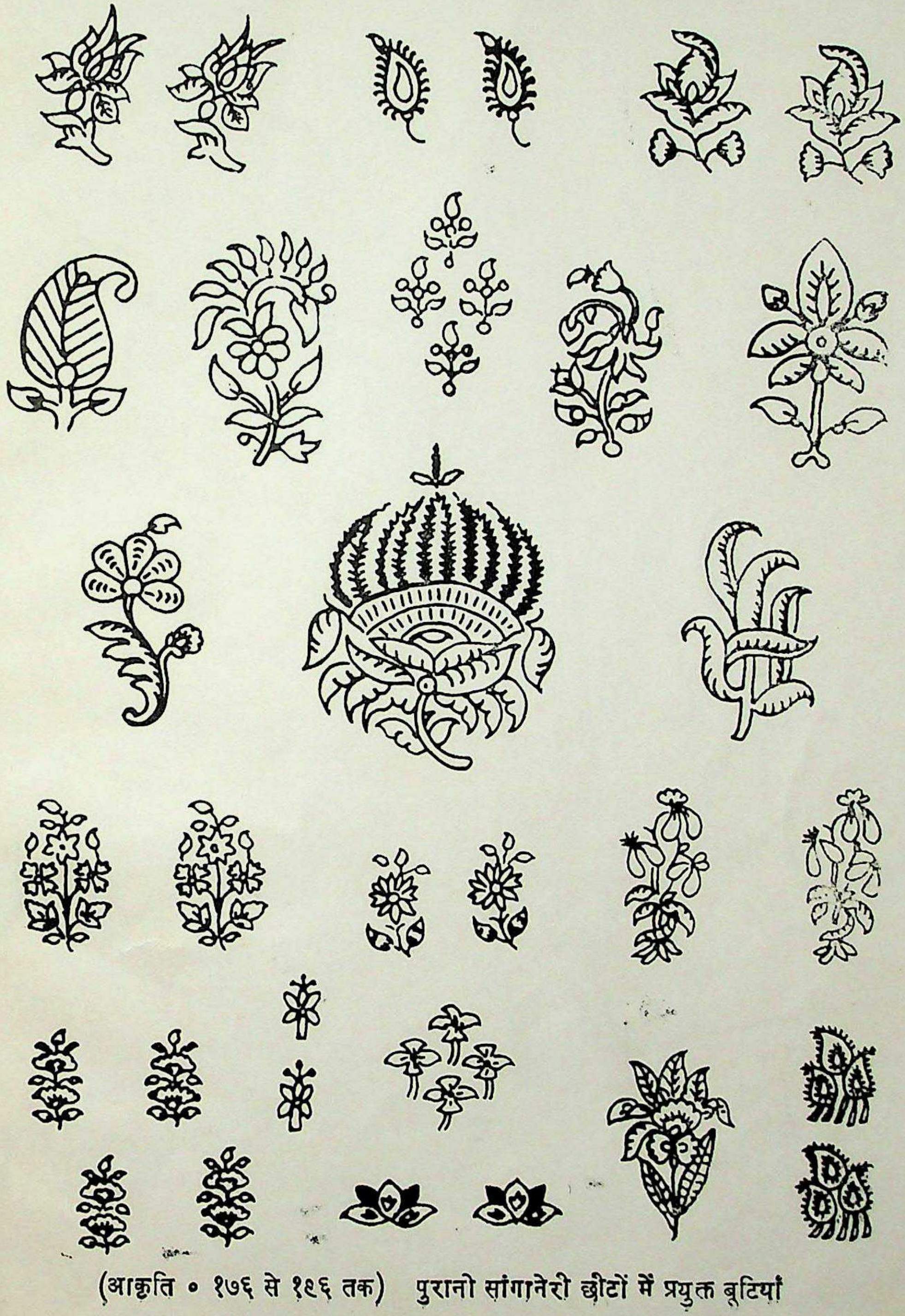

(आकृति • १७६ से १९६ तक) पुरानी सांगानेरी छीटों में प्रयुक्त बूटियां

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh